Chap-5

# पंचम अध्याय

## गुजरात के साठोत्तरी हिन्दी साहित्य की विविध विधाओं का समीक्षात्मक अध्ययन

# गुजरात के साठोत्तरी हिन्दी साहित्य सृजन की विविध विधाओं का समीक्षात्मक अध्ययन

गुजरात हिन्दी साहित्य सृजन की उर्वरा भूमि रहा है। यहाँ जैनाचार्य हेमचन्द सूरि जैसे समृद्ध साहित्यसृष्टा हुए हैं, जिन्होंने पूर्ण राजकीय सम्मान से अपने सम्पूर्ण सृजन हिन्दी शब्दानुशासन व्याकरण के ग्रंथ को हाथी पर सुशोभित करके शोभायात्रा निकाली थी। नरसीं मेहता ने यहाँ लोक मानस को साहित्य रस से सराबोर किया तो गोविन्द गिल्लाभाई जैसे मेघावी ब्रजकवि भी हुए जिन्होंने परिमाण और स्तर दोनों ही दृष्टि से उच्चकोटि का ब्रजभाषा साहित्य सृजन किया तथा हिन्दी भाषी किसी भी प्रतिष्ठित आचार्य कवि के समानान्तर प्रतिष्ठा भी प्राप्त की।

आधुनिक के तीन कालखण्ड निश्चित किए गए हैं। प्रारंभिक आधुनिक काल, मध्यवर्ती या साठोत्तरी आधुनिक काल और उत्तरवर्ती आधुनिक काल।

पूर्ववर्ती प्रारंभिक काल को जग जागरण काल भी कहा गया है, जब हिन्दी साहित्य सृजन में आम आदमी के हर्ष एवं विषाद को संयोजित किया गया तथा सर्वहारा वर्ग की चीडा को सार्वजनिक रूप विज्ञापित करके संवेदना के विस्तृत आयाम आयोजित किए गए। आधुनिक काल की मध्यवर्ती समय स्वतंत्रता के बाद का लोकोत्सवी काल भी था और आजादी की दिवास्वप्नी आकांक्षाओं के मोहभंग का भी काल था। इसी कालखण्ड में हिन्दी साहित्य में रूस की लाल क्रांति का व्यामोह जगा तो साम्यवाद की प्रभावान्विति के द्वारा आम आदमी के अधिकारों की जंग भी शुरू हो गई। हिन्दी साहित्य में शोषित, दमित, श्रमजीवी मजदूर और किसान की अन्तर्पीड़ा को उजागर किया।

नारी स्वातंत्र्य और दलित विमर्श के अध्याय खोले गए। समाज की असमानता की व्यवस्था को चुनौती दी गई। महाप्राण निराला के जनाक्रोशी उद्घोष, माखनलाल चतुर्वेदी के ग्राम्यज उद्गार और रामधारी सिंह 'दिनकर' की जनक्रांति की गर्जना ने साहित्य में आम आदमी की साझेदारी को अनिवार्य बना दिया। रमेश रंजक, नागार्जुन, भगवती प्रसाद मिश्र, धर्मवीर भारती आदि युगचेता रचनाकारों ने सतही जमीन पर खड़े होकर अपनी बुलन्द आवाज में आवाम की चीखें, उसके दर्द और उसकी बेबशी को सामने रखा। समग्र देश में लगभग इसी सोच के समानान्तर साहित्य की वैचारिकी अग्रसरित हुई थी।

गुजरात एक सम्पन्न और विवेकशील सतर्क और उदारवादी संचेतना से जुड़ा राज्य है। साहित्य की राष्ट्रीय अस्मिता के साथ उसने कदम से कदम मिलाए। स्वातंत्र्योत्तर कालीन गुजरात का हिन्दी साहित्यकार इसका समर्थक है। साठोत्तरी गुजरात के हिन्दी साहित्य मोहभंग और भृष्टाचरण के प्रति आक्रोश की प्रतिध्वनियाँ सुनाई देती है। यहाँ के अनेक वरिष्ठ हिन्दी साहित्यकारों ने देशकाल परिस्थितियों के अनुरुप अपने कदम बढ़ाए है।

गुजरात के साठोत्तरी हिन्दी साहित्य में सोच के लगभग वे ही आयाम अधिष्ठित हुए हैं जो समग्र हिन्दी भाषी अंचलों में पनपे हैं। इस कालखण्ड के अनेक वरिष्ठ साहित्यकारों ने अपने सार्थक सृजन से यह घोषित किया है कि वे अधिकांशतः राष्ट्र की केन्द्रस्थ धारा से संलग्न रहे हैं।

ऐसे वरिष्ठ साहित्यकारों में प्रो. अम्बाशंकर नागर, अविनाश श्रीवास्तव, किशोर काबरा, द्वारकाप्रसाद साँचीहर, नथमल केड़िया, नलिनी पुरोहित, नवनीत ठक्कर, प्रभास शर्मा, बसंत परिहार, भगवतशरण अग्रवाल, भगवानदास जैन, भागवत प्रसाद मिश्र 'नियाज', रमाकांत शर्मा, रमेश चन्द्र शर्मा 'चन्द', रामचेत वर्मा, विष्णु विराट, नवीन प्रकाश सिंह 'नवीन' आदि का साहित्य सृजन कालानुरूप तथा सामयिक सोच से सम्पृक्त रहा है।

गुजरात के साठोत्तरी हिन्दी साहित्य में गद्य एवं पद्य की प्रायः सभी विधाओं में पुष्कल परिमाण में लिखा गया है। कहानी, उपन्यास, ललित निबंध, समीक्षा, समालोचना, पत्र-साहित्य, सम्पादकीय, आत्मकथा, संस्मरण, मीडिया लेखन, रुपक, नाटक आदि गद्य विधाओं की तरह कविता, गीत, नवगीत, मुक्तक, गजल, हाइकू, प्रबंध काव्य, महाकाव्य आदि के रूप में भी यहाँ पद्य साहित्य का सृजन हुआ है।

जहाँ तक पद्य साहित्य के सामयिक सृजन की समीक्षा का विषय है। वहाँ कहा जा सकता है कि साहित्यानुशासन के निकष पर खरी उतरने वाली कविताओं के सृष्टाओं ने बहुत ही समृद्ध और स्तरीय काव्य का सृजन किया है। यहाँ हम कुछ वरिष्ठ हस्ताक्षरों के कृतित्व की समीक्षा प्रस्तुत करेंगे।

भागवत प्रसाद मिश्र 'नियाज' गुजरात के वरिष्ठ साहित्यकार हैं। आपका साहित्य सृजन सन् १९५० से ही प्रारंभ हो गया था। आपका प्रथम खण्डकाव्य 'कारा' सन् १९५०

में ही प्रकाशित हुआ था। जिसकी भूमिका राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त ने लिखी थी। गीत और गजल लेखक में आप सिद्धहस्त हैं, साथ ही अनेक काव्य कृतियों का इन्होंने अग्रेजी में भी काव्यानुवाद करके अपनी वरिष्ठता का परिचय दिया है। 'मिश्र जी के काव्य में कालानुसरण की अद्भुत क्षमता है। छायावाद, प्रगतिवाद और नई कविता के दौर में वे सदा समय के साथ रहे हैं। वे मैथिलीशरण गुप्त, निराला, महादेवी वर्मा, माखनलाल चतुर्वेदी, पं. श्री नारायण चतुर्वेदी जैसे बड़े कवियों के सम्पर्क में आये हैं। अंग्रेजी साहित्य के बड़े कवियों की कविता के प्रभाव ने भी उनके जीवन–दर्शन को व्यापक बनाया है। सौंदर्यबोध, राष्ट्र–प्रेम और अध्यात्म उनकी कविता की प्रधान विशेषताएँ हैं।

मिश्र जी गीत और ग़ज़ल लिखने में सिद्धहस्त हैं। हिन्दी और उर्दू दोनों भाषा–शैलियों में उन्होंने सुन्दर रचनाएँ की हैं। भावों की उदारता, भाषा की प्राञ्जलता और छन्द तथा लय का निर्वाह मिश्र जी के काव्य की प्रधान विशेषताएँ हैं।'[1]

अपनी बात को नये अंदाज में व्यक्त करने की इनकी अद्भुत क्षमता है एक गीतांश द्रष्टव्य है –

मैं तूफानों का दीप, सदा जलता आया।
मैं अंधकार की आँखों में खलता आया।।
मेरा अस्तित्व सदा लहराते ब्यालों पर,
मेरा अस्तित्व सदा बलखाते कालों पर,
मैं निविड़ निशा में अट्टहास करता आया।
मैं तूफानों का दीप, सदा जलता आया।।
मेघों का गर्जन हो या ज्वाला अम्बर की,

सागर का तर्जन हो या हाला अन्तर की,

मैं विकट शून्य में रवि का स्वर भरता आया।

मैं तूफानों का दीप, सदा जलता आया।।[२]

इसी तरह कवि अन्य गीत में कहता है –

मैं विक्षिप्त धरा पर चलनेवालों की गति देख रहा हूँ।

जीवन में उठ–उठ कर गिरनेवालों की गति देख रहा हूँ।।

लपटों में झुलसे अंगों का आज निरीक्षण करनेवाला,

सह न सका पीड़ा को, फूटा, बह निकला इस उर का छाला,

छाले के पानी में तिरते नयनों की गति देख रहा हूँ।

आज नाभि से कण्ठ, कण्ठ से नयनों में जा प्राण समाये,

नयनों ने जब किया किनारा, पलक छोड़कर बाहर आये,

द्रवित कपोलों के ढालों पर आँसू की गति देख रहा हूँ।

यह उत्ताल तरंगों वाला मन का सागर लहराता है,

एक बिन्दु के बिना किन्तु मुख–कण्ठ आज सूखा जाता है,

निर्निमेष मैं उड़ने वाले विहंगों की गति देख रहा हूँ।

सिर धुनते हैं आज जिन्होंने आशाओं के तोते पाले,

नभ पर उड़ते जाते हैं ये आज धरा पर रहने वाले,

मैं व्याकुल मानव की सूनी आँखों की गति देख रहा हूँ।

इन सबसे मैं ही अच्छा हूँ छोड़ दिया जो साथ तुम्हारा,

जगते–सोते याद तुम्हारी से होता अभिसार हमारा,

दिवा–निशा के इसी मिलन में मैं अपनी गति देख रहा हूँ।[३]

हिन्दी और हिन्दी साहित्य को गुजरात की धरती पर प्रतिष्ठित करने वाले वर्तमान साहित्यकारों की श्रृंखला में प्रो. अम्बाशंकर नागर का नाम भी अग्रगण्य है। गुजरात में सृजित हिन्दी साहित्य के संदर्भ में आप बहुत श्रेष्ठ एवं शोधपरक तथ्यों का उद्घाटन किया है। डॉ. गोवर्द्धन शर्मा ने इनके सृजन को समीक्षित करते हुए कहा है कि 'कवि कविता के प्रति अपार श्रद्धा है। वह उसके प्रत्येक बोल का तोल समझता है। वह स्वयं कहता है 'पहले तोलो फिर बोलो' कविता में –

पहले तोलो / फिर बोलो / व्यर्थ मुँह मत खोलो।[४]

केवल मुँह खोलना कविता नहीं है। कविता तो मन की विभूति है। वह धरती का अमृत है। मुँह खोलने की अनेक प्रक्रियाएँ हो सकती हैं लेकिन कविता की प्रक्रिया मनन और चिन्तन के पश्चात् ही शुरू होती है –

जिसको मन ही मन गोया,

दीर्घकाल तक जिसे संजोया

व्यक्त कर रहा हूँ अब उस ही

मन को विमल विभूति को

बाँध रहा हूँ शब्दों में अनुभूति को।[५]

हमारा कवि जिस प्रतीति तक इन्द्रि–व्यत्यय के माध्यम से पहुँचा है, उस प्रतीति को वह अनुभूति में रूपांतरित कर शब्दों के द्वारा प्रस्तुत कर रहा है। यही तो कवि–कर्म

है। 'अहे कवि' कविता में यह बात और स्पष्ट हो जाती है कि ऋत या सत्य को पाना ही कवि–कर्म का शिखर है। वाद–विवाद, यौन–यौवन, मत–विमत और शंका–कुशका कविता के शिखर नहीं है –

**साहित्य के शिखर पर / चढ़ कर / अहे कवि**

**सत्य को छू लिया / क्षण भर जी लिया**

**धन्य हो गई धरा / धन्य हो गई गिरा।**[६]

कवि तो वही होता है जो सत्य के क्षण का साक्षात्कार कर लेता है। कवि अपनी एक अन्य कविता 'काव्य–बिम्ब और लय' में भी इसी तथ्य की ओर संकेत करता है –

**जो लिखो / अच्छा लिखो / अनुभूति से / सच्चा लिखो**[७]

सत्य की अनुभूति ही कवि के मन में सर्वोपरि है। वह मानता है कि सत्य की अनुभूति जब बिम्बों का सहारा लेकर प्रकट होती है तो वह कविता हो जाती है –

**बिम्ब की भाषा में / कविता बोलती है।**

**भेद अपने / हृदय का वह खोलती है।**

**काव्य लिखना हो तो / बिम्बों में लिखो।**

**बिम्ब भी ऐसे / कि जिनमें तुम दिखो।**[८]

कविता में बिम्बों के साथ लय के आग्रह के भी हिमायती हैं संगीतज्ञ कवि नागर। छन्दों के बन्धनों की शिथिलता सह्य है पर लय की स्थिति तो अनिवार्य है। कवि के मत में लय तो जीवन की धड़कन है, कविता–कामिनी की वह नाड़ी है।

**लय नाडी है। कविता कामिनी की / धड़कती रहकर निरंतर।**[९]

इस संग्रह की दो कविताएँ साम्प्रत संदर्भ में अहमियत रखती है। एक है 'हिन्दी इस देश की गंगा है' और दूसरी है 'गाँधी शताब्दी पर'। कवि ने हिन्दी को देश की गंगा कह उसकी व्यापकता को पुनः रेखांकित किया है। वास्तव मे प्रेम, श्रद्धा और भक्ति के साथ लिखी गई हिन्दी विषयक रचनाओं में यह एक मर्मस्पर्शी रचना है।

**पावन पुनीत यह प्रांजल है / अक्षर अक्षर गंगाजल है।**[१०]

'गाँधी शताब्दी पर' कविता में महात्मा को भावपूर्ण श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कवि उनकी अनुपस्थिति में देश के दुर्भाग्य का एक मर्मस्पर्शी चित्र इन पंक्तियों में पेश करता है –

**सोने का मारीच राम को प्रेरकर,**

**मन के लछमन को भी छल से टेरकर**

**उड़ा ले गया दूर जो रावण हर सके,**

**स्वतंत्रता–सीता को निर्भय घेर कर–**

**तुम होते तो आज जटायु बन जाते।**[११]

कवि ने बड़ी गहरी संवेदना इन पंक्तियों में भर दी है। सारे संदर्भों को मिथकीय परिवेश प्रदान कर कवि ने अर्थ–उदीप्ति को गहराया है।

'कैक्टस' भाग की सारी कविताएँ चिन्तनात्मक हैं और अपने जमाने से जुड़ी हुई हैं। कवि ने वर्तमान की विसंगतियों, विडम्बनाओं से त्रस्त हुए बिना युग के घावों पर अंगुली रखी है। अधिकांश कविताएँ युगबोध से अनुप्राणित हैं। डॉ. शिवमंगल सिंह 'सुमन' के कथनानुसार 'डॉ. नागर की कविता में वर्तमान और अनागत के संबन्ध–सूत्र विद्यमान हैं। इसलिए डॉ. नागर जी की कविता में जहाँ वर्तमान के दोगलेपन को धुत्कारा गया है,

उसके मुखौटों की असलियत को पहचाना गया है वहाँ मानव–मन के मोती की चमक को सराहा भी गया है –

**बात –बात में मनमुटाव, संशय, शंकाएँ,**

**गलतफ़हमियाँ, घोर निराशाएँ, कुंठाएँ**

**इन अवरोधों में से जो खेती है किश्ती**

**जागृत कर भावी आकांक्षाएँ, इच्छाएँ,**

**बलिहारी है श्रद्धा के उस पतवार की।**

**कितनी अनजानी हैं राहें प्यार की।।**[१२]

आशा और उत्साह के सहारे ही जीवन–सरिता में मन की नाव को गंतव्य तक पहुँचाया जा सकता है। 'पथिक' कविता में कवि ने यह चेतावनी दी है कि पथिक फूलों की कोमलता परस तितलियों की रंगीनी पर, बुलबुलों के संगीत पर भ्रमित न हो, क्योंकि मंजिल दूर है। जीवन स्वयं क्षणिकता से शश्वतता की एक यात्रा है, सान्त से अनन्त का पैगाम है –

**तू न अपने लक्ष्य रंग–रेलियों में भूल जाना**

**जाग तुझको है दूर जाना।**[१३]

'मैं', 'मेरा अहम्', 'मैं खुदा हूँ', 'मैं हैरान हूँ' इन कविताओं में आज के मनुष्य के सभी पहलुओं की तसवीरें झड़पी गई हैं। 'मैं' में आदमी के उस सत्व को अभिव्यक्ति है जो सर्वतंत्र है। क्षुद्रताओं और जकड़नों से ऊपर उठनेवाले आदमी को ही 'मैं' के अन्दर कैद होनेवाले आदमी को 'मेरा अहम्' में निर्वस्त्र किया गया है। अहम् के दर्प और खोखलेपन को लताड़ा गया है।

मुझसे मेरा अहम् बड़ा है। जाता हूँ जिस ओर वहीं

पथ रोके मेरा अहम् खड़ा है। मुझसे मेरा अहम् बड़ा है।[१४]

''मैं खूदा हूँ'' में अहम् प्रायोगिक रूप में सामने आया है जो सबसे 'सिजदा' कराने पर तुला है। हर आदमी अपनी परिधि में अपने आपको नियामक मान कर असंतुलन पैदा कर रहा है। 'मैं हैरान हूँ' कविता में आदमी के अहम् के फुग्गे की गहरी व्यंजना हुई है। आज के आदमी के अहम्, दर्प, स्वार्थ और अवसरवादिता के खुले चित्र इन कविताओं के प्रतिपाद्य हैं।

'नया वर्ष' कविता में कवि मानता है – हर दिन नया होता है, हर क्षण नया होता है, हर जिन्दगी नित नई होती है। इसलिए उत्साह से काम लीजिए। आगन्तुक कल का स्वागत कीजिए। इसी में तृप्ति है, वही वरदान है –

कर रहा हूँ मैं। अभिनन्दन। नई कोंपलों का

और मुझको है अटल विश्वास। इस नूतन सृजन से

तृप्ति का वरदान मानव को मिलेगा।[१५]

'नये पौधे' कविता में कवि खोखली तृप्ति का नहीं, सक्रिय तृप्ति का एहसास कराता है। नाश से निर्माण की ओर कवि की दृष्टि है। नये पौधों के विकास के लिए जीवन–माली का यही तो काम है कि वह उन पौधों को काटे, छाँटे जो पुराने पड़ गए हैं और दूसरों के रास्ते के रोड़े बन गए हों –

छाँटना पड़ता है / उन सरकश दरख़तों को

जो खुद बढ़ते नहीं हैं। बस अड़े हैं

दूसरों की राह रोके हैं। खड़े हैं।[१६]

दोष का परिमार्जन ही तृप्ति का वरदान है –

प्यासों के लिए कुओं की कमी नहीं / फिर भी जाने क्यों।

मनुष्य प्यासा खड़ा है / तृषा हो तो /

ज्ञान के कुएँ में / श्रद्धा की डोरी से /

पात्रता के कठौते को बाँध / अपार्जित कर लो अभिप्रेत

डोरी ओछी न रही तो / तृप्ति अवश्यंभावी है।[१७]

ये कविताएँ जहाँ जीवन–संघर्ष को पुरस्कृत करती हैं वहाँ इनमें भविष्यत् के आशावादी स्वरों की मुस्कराहट भी विद्यामान है।

कवि आज के मनुष्य की द्विविधा से परिचित है। 'दायरे' कविता इसी दयनीय स्थिति को रेखांकित करती है। 'आज' कविता में गीता के अर्जुन के संशय को दुहराया गया है –

लगता है / महाभारत का । पुनरावर्तन हो रहा है । भारत में वास्तव में आज देश का हर भीष्म चुप है, हर माली मौन है, हर पति शांतनु है, हर पत्नि सत्यवती है और हर पुत्र व्यास द्वैपायन है।[१८]

आज के भारत का यही महाभारत है। कवि ने इस मिथक के माध्यम से गंभीर और सार्थक टीका आज के समाज की प्रस्तुत की है। 'आज का मनुष्य'। ऊपर से कुछ और है और अन्दर से कुछ और। इस यथार्थ को रेखांकित करती है निम्न पंक्तियाँ –

आज का मनुष्य मनुष्य नहीं / लुच्चा है, लफंगा है

ऊपर से सफेद पोश / अन्दर से नंगा है।[१९]

उलूक बनकर या तो सूर्य के सत्य को झूठलाया जा रहा है या फिर गीध बनकर ढकी हुई सड़ाँध को ढूँढ़ा जा रहा है। इन दो दृष्टियों की जुगलबंदी ने आज की विडम्बना को उकेरा है –

**विडम्बना है कि / मानव–मन / अभिहित सत्य की / अवहेलना कर वर्जित तथ्य की / गहराइयों में / पैठ जाता है।**[२०]

'आज और कल' कविता में यही तथ्य व्यक्त होता है –

**पहले / जब मानव / परिस्थितियों से / समझौता नहीं करता था / मारता था / मरता था / तब जीवन / पराक्रमों का मंगल–सूत्र था / और मृत्यु / उसमें गुंथा / सोने का मनका था।**[२१]

आज का आदमी हर जगह समझौता कर रहा है। इसलिए वह सोने के मनके के स्थान पर सिलाई का धागा बन गया है। परिस्थितिवश किया गया समझौता आज त्रासदी बनकर रह गया है। आज मनुष्य का विकृत रूप न केवल व्यक्तियों को अपितु संस्थाओं को भी अपने चपेट में ले चुका है। कवि ने ये शिक्षण धज्जियाँ उड़ाई हैं। कवि ने जहाँ देश की वर्तमान शिक्षा–प्रणाली को निरावृत किया है वहाँ उसकी भारतीयता ने नालंदा और तक्षशिला की ओर संकेत कर अपनी परंपरा को उजागर भी किया है। घिनौने यथार्थ के साथ भविष्य के मंगल का विधान भी किया है। वास्तव में 'ये मैकाले की टकसालें' कहकर कवि ने पश्चिमाभिमुखी अहोभाव से आक्रांत हमारे शिक्षा–संस्थानों की सच्ची तसवीर पेश की है। इसमें देशप्रेमी मनीषा का तीव्र आक्रोश भी है और मर्मांतक वेदना भी है।

कवि ने अपने युगबोध एवं अपने यथार्थ–दर्शन को 'कितना अच्छा होता' कविता में कौशल से समेट लिया है। इसे कवि के आधुनिक चिन्तन का अर्क कहें तो अत्युक्ति

नहीं होगी। इस प्राणवान रचना में रूपकों के सहारे चिन्तन की तख्ती लगाकर इसे प्रकट किया गया है। इस कविता की प्रहारशक्ति मर्मभेदी है। कवि ने आज के यथार्थ की एक-एक पर्त कबीरी मुद्रा में खोल कर रख दी है। एक 'हाइपोथेटिकल' वातावरण में आज के मनुष्य की 'हाइपोक्रेसी' के गुब्बारे को शब्दों की सुइयों से बींधा गया है।

'कैक्टस' अंश की कविताएँ कवि की चिन्तनात्मिकता की गहरी पैठ से समन्वित है। वर्तमान समस्याओं को लेकर समाज के विभिन्न अंगों की असलियत को अनावृत्त करने में गहरे व्यंग्य और मर्मभेदी हास्य का संपुट इन कविताओं की विशेषता है। कवि की सूक्ष्म निरीक्षणशक्ति के वैभव के साथ बिखरे सत्यों के साक्षात्कार ने इन कविताओं को आज के जीवन से जोड़ दिया है। कवि ने नई भाव-भंगिमा से युगबोध को वाणी दी है। मिथकीय शब्दों के सार्थक प्रयोगों ने इन कविताओं को दोहरे, तीहरे अर्थबोधों से भरकर भाषा-शिल्प के नए आयाम उद्घाटित किये हैं। डॉ. शिवमंगल 'सुमन' जी के शब्दों में कहें तो 'कैक्टस' खण्ड में सत्य की सूक्ष्म संवेदना के पारदर्शी स्वरों का उद्घाटन करने का काम किया गया है। नये शब्दप्रयोग, नूतन अर्थवत्ता और नई कथन-भंगिमा इस खण्ड की कविताओं को हिन्दी की आधुनिक काव्यधारा से जोड़ती हैं और उनके सर्जक को समृद्ध कवि के रूप में प्रस्थापित करती हैं।

**'चाँद-चाँदनी'** भाग की कविताएँ 'कैक्टस' भाग की कविताओं से विषय और कथ्य की दृष्टि से अलग हैं। इनमें मानव-मन के शाश्वत तारों की झंकार है।

प्रेम इन कविताओं के केन्द्रस्थान में है। कवियों ने प्रेम की भाव-भूमियों को शब्दों के द्वारा व्यक्त करने का प्रयास किया है फिर भी वह उनकी पकड़ से बाहर रहा है। कवि नागर ने मानव-मन की इस द्रवीभूत स्थिति की अनाख्येयता का स्वीकार किया है। वे कहते हैं कि प्रेम को, वाणी शब्दों में नहीं बाँध सकती है -

प्यार को वाणी कहे / यह तो असंभव है असंभव।[२२]

प्रेम को तो प्रेमी भी नहीं पहचान पाता है। वह तो उसके हृदय में चुपके से दुबका रहता है। नागर जी ने 'प्यार क्या है' कविता में इस प्यार को कलात्मक रूप से परिभाषित किया है। उनका कथन है कि प्यार अनाहतनाद है। प्यार अनिर्वचनीय है। प्यार वरदान है और प्यार अभिशाप भी है –

यह अनाहतनाद–सा बजता हृदय में / वह मधुर आहलाद–सा सजता हृदय में यह कसक बनकर कसकता है सदा / दैव का वरदान है या आपदा।[२३]

वास्तव में ये ढाई अक्षर प्रकृत्या विरोधाभासी हैं। इसलिए शब्दों में इन्हें बाँधना कठिन है। पर मौन में भी वह मुखर हो उठता है।

प्यार को / वाणी की दरकार नहीं

प्यार को शब्दों से / सरोकार नहीं

मौन ही / प्यार की वाणी, भाषा

फिर भला / व्यर्थ ही क्यों बके जाओ।[२४]

जहाँ कवि का शब्दज्ञ प्यार को मौन में देखता है वहाँ उनका संगीतज्ञ प्यार को स्वर में पहचानता है –

प्यार / दो साजों की / जुगलबन्दी है,

जिसमें हर तार / मिल के बजता है,

बेसुरे तारों को / खूँटियाँ खींचो

जो बेमेल हों, मिलाते जाओ, जिसे.....[२५]

कवि ने प्रेम की परिभाषा को जुगलबन्दी के इस बिम्ब से बड़ी खूबी के साथ पेश किया है। प्यार में स्वरों की समता और सहभाव आवश्यक हैं। भिन्न स्वरों के सामंजस्य से संगीत निखरता है। प्यार तो उस क्रियाशीलता का नाम है जो न रूप की क्षणिकता की चिन्ता करती है न यौवन की अस्थिरता से दुःखी होती है। जीवन भले ही बीतता जाय, रीतता जाय पर प्रेम पर समय की काई नहीं लगती है न बुढ़ापा ही उसे रसहीन बना सकता है। 'प्यार का बूढ़ा पखेरु' कविता में इसी भाव को व्यंजित किया गया है।

**हो गई है आज / मुझको भी प्रतीति**

**पात झड़ जायें। भले ही वृंत से**

**वय, रूप के**

**प्यार का बूढ़ा पखेरु। ठूँठ पर बैठा रहेगा।**[२६]

यही तो भौतिकता की आध्यात्मिकता है। प्रेम तो स्वयमोदित झरना है। उसके उदित होने पर अनजान भी चिरपरिचित हो जाता है, परजन ही स्वजन बन जाता है। यह अशरीरी देव अनेक लीलाओं वाला है और अनेक राहोंवाला है।

**अद्भुत लीलाएँ हैं इस व्यापार की।**

**कितनी अनजानी हैं राहें प्यार की।**[२७]

प्यार की धुरा के रूप में कवि नारी को मानता है। उसके अनुसार नर के प्यार की नारी गंगोतरी है, गोमुख है। धरती के सभी आकर्षणों से वह सबसे प्रबल आकर्षण है। कवि ने इस तथ्य को 'अनजानी राहें' कविता में उजागर किया है–

**जितने भी आकर्षण हैं धरती के ऊपर,**

**नारी उनमें सर्वाधिक आकर्षक सुन्दर,**

SMT. HANSA MEHTA LIBRARY The M. S. University of Baroda

रूप–शिखा–सा जगमग जिसका देह–दीप हो

मन पतंग मँडराएगा ही उसके ऊपर।[२८]

यही मॅडराना तो प्यार की मंजिल का रास्ता है। वह वाणी की बात नहीं, मन की कथा है।

मन की बात होठों तक आ कुम्हला जाती है।

उसका रूप बदलता गंध बिखर जाती है।

इसलिए वे मौन रहा करते हरदम

जिनकी तबियत किसी अन्य पर आ जाती है।[२९]

नागरजी ने भी प्रेम को बाहरी कारणों का योग नहीं, अपितु अन्दर की किसी अनजानी, अनपहचानी चाहों का समीकरण कहा है। 'फूल की स्मृति' कविता में कवि ने प्रेम के शरीरी और अशरीरी रूपों को अभिव्यक्ति दी है। प्रेम इन्द्रियग्राह्य वस्तु के ओझल होने पर भी मन में बैठा रहता है।

एक युग के बाद भी। जब देखता हूँ। मन मुकुर में

तो यों लगता है कि जैसे नित नई है।[३०]

'त्रिपथगा' में प्रेम के तीनों रूपों को गंगा के तीनों रूपों से जोड़कर कवि ने न उसकी पवित्रता और दिव्यता, अपितु उसके पार्थिव स्तरों को भी व्यक्त किया है। गंगा जब हिमालय से निकलती है तो वह छोटी होती है। घाटियों और मैदानों को पार करती हुई बलवती धारा बन जाती है और अन्त में मदिर, मंथर हो समुद्र के समतल में अपने आप को मिला देती है। प्रेम की धारा भी हृदय से उद्भूत होते समय छोटी लगती है। फिर परिस्थितियों के आवेग में उद्दाम बनकर प्रेम के सागर में अद्वैतता प्राप्त कर लेती है।

प्रस्तुत कविता में भारतीय संस्कृति के अनुरूप दाम्पत्य प्रेम के तीनों रूपों का व्यापक एवं शालीन चित्र उभरा है। सम्भवतः 'तृप्तकाम' का यह एक वरेण्य चित्र है। कवि ने 'भँवरे और परवाने' कविता में प्रेमियों के प्रकारो को दो परंपराओं से जुडे प्रतीको के माध्यम से प्रकट किया है। संस्कृत परंपरा में भ्रमरवृत्ति के तीन स्तर होते है। एक वे भ्रमर होते हैं जो रस पीकर उड़ जाते हैं। दूसरे वे भ्रमर होते हैं जो कठिनाइयों से जूझते हुए भी अपने कमल–प्रेम को बनाए रखते हैं। फारसी परम्परा में परवाने भी तीन तरह के होते हैं। एक तो केवल ज्योति–शिखाओं पर मँडराते ही रहते हैं और दूसरे वे होते हैं जो पंख जलते ही पलायन कर जाते हैं। तीसरे ऐसे होते हैं जो प्राणों का अर्ध्य चढ़ाकर अपने आपको कुर्बान कर देते हैं। प्रेम के सार्वभौमत्व को प्रतिपादित करती हुई यह कविता भारत की सामासिक संस्कृति की उत्कृष्ट धरोहर है। कवि जोर देकर कहता है कि प्रेमी वही उत्तम है जो समर्पित हो, उत्सर्गित हो –

**विरल ही होते हैं। जो ज्योति–शिखा पर प्राणों का अर्ध्य चढ़ा पाते हैं।**

समासोक्ति और बिम्बवाद से निखरी यह कविता विचार और भावों की रसात्मक समन्विति है। कवि प्रेम में निष्ठा का प्राध्यान्य स्वीकारता है। **'जिसे वरो, उसे हरो और उसी को अनुसरो और नमन भी करो।'**

'चाँद–चाँदनी' भाग की सभी कविताओं में प्रेम के अनेक पहलुओं के संवेदनशील चित्र उभरे हैं। प्यार की परिभाषा, प्यार के रूप, प्रेमियों की कोटियाँ, प्रेम की अद्वैतता, प्रेम की नित्य नवीनता, सर्वोपरिता, प्यार का गणित, प्यार की राहें आदि प्रेम के अनेक आयामों पर रसनिष्पन्दी शैली में कवि ने बिम्बात्मक चित्र प्रस्तुत किए हैं। भारतीय साहित्य में भक्ति हो या श्रृंगार दोनों में मिलन और विरह की भूमिकाएँ महत्वपूर्ण समझी

गई हैं। कवि ने प्रस्तुत संग्रह में मिलन की मदकता को 'दो घडी हँस-बोल लें हम' और 'तू कर हृदय की बात' कविताओं में बड़ी कोमतला से उद्घाटित किया है।

'दो घड़ी हँस-बोल लें हम' बड़ा मधुर गीत है। एक भावना का सान्द्र सघन व्यापार है। प्रेम की सार्थकता या परिपूर्णता मिलन के उन क्षणों में साकार हो उठती है जब दो प्रेमी अपने लोक में खो जाते हैं। इस मिलन-बेला में संयोग श्रृंगार अपनी चरम-सीमा पर पहुँच जाता है। इन मधुर क्षणों में कवि ने केवल प्रेमी और प्रेमिका के हृदयों को ही आह्लादित नहीं पाया अपितु सारे अगजग को भी अपनी अपनी प्रेम-परिधि में हिल्लोरें लेता बताया है। देखिए -

**निरख नभ में जा रही है चाँद की बारात,**

**और भू पर चाँदनी छिटकी हुई अवदात**

**गंधवाही पवन प्रेरित सुरभि की यह वृष्टि,**

**करती अतीन्द्रियलोक की अद्भुत अपूरब सृष्टि,**

**कितनी मधुर है मिलन की प्रिय आज की यह रात....**

* * *

**बैठ तारों से इस यामिनी में आज हम तुम**

**जो सदा उलझी रहीं उन गुत्थियों को खोल लें हम।**[३१]

'एक अनुभूति' कविता में मिलन के रंग और गाढ़े हो गए हैं। मिलन की संपूर्ण तृप्ति का सागर यहाँ उच्छसित हो उठता है।

**तृप्त काम हूँ मैं। तुम से मिलकर**

अक्सर मुझे। ऐसा महसूस हुआ है।[३२]

कवि ने मिलन की अनुभूति तो रूप, रस, शब्द और स्पर्श के पात्रों में तेज और गंध के प्रवाह को ढाल कर एक अद्भूत दृश्य उपस्थित किया है। पॉचों भौतिक तत्व मिलन के आध्यात्मिक क्षणों की उपासना में लीन हो जाते हैं। मिलन का यह अद्भुत आस्वाद सिद्धहस्त मनीषियों का ही प्रसाद होता है।

**अनकही कह अनसुनी सुन लें परस्पर**

**पाट दें अब तक रहा जो क्षीण अन्तर**

**एक स्वर में बज उठें फिर तार, उर के**

**एकरसता ही प्रिये प्रेम की सौगात है ।**[३३]

कवि की शब्द–साधना और संगीत–साधना का एक समन्वित रूप यहाँ मिलता है। तृप्त क्षणों को प्रेम की सौगात कहकर उसकी अविस्मरणीयता को अक्षुण्ण रखा गया है।

मिलन के साथ विरह के चित्र भी इस खण्ड में हैं। 'याद तेरी आती है' कविता में तनहाइयों में डूबे हुए एक विरही की टीस भरी आवाज है। दूर कोई वंशी पर बिरहा बजा रहा है और इसके विरही चौंक उठता है –

**रात की तनहाइयों में। दुनिया डूब जाती है**

**दूर से बिरहा । वंशी धुन गाती है,**

**चौंक उठता हूँ ख्वाब के सैलाबों से**

**और तभी अक्सर मुझे। याद तेरी आती है।**[३४]

उपरोक्त कविता में बिरहा नायक के मन में उथल–पुथल मचा देता है। 'आज मन मायूस है' कविता में नायक पछताता है कि वह स्वर्ण--मृग के लोभ में अपनी 'सीता' को गँवा बैठा है। आज का महानगरीय नायक शायद परिताप के इन क्षणों से गुजरा हो। वह उदास और खिन्न है।

**आज मन मायूस है। और उदासी**

**लिहाफ़–सी लिपटी हुई है।**

**जानता हूँ। कहीं कोई अंग। उघड़ा रह गया है**

**(और सर्द पड़ता जा रहा है)**

**ढँक नहीं पाता जिसे मैं।**[३५]

संवेदनात्मक आवेग का सूक्ष्म और पारदर्शक बिम्ब यहाँ विद्यमान है। अपनी वेदना को अपने सुख में महसूस करना एक विरल संवेदन है। कवि ने लिहाफ़ और उघड़े अंग को आमने–सामने रखकर मन की मायूसी को मूर्तिमंत किया है।

इसी क्रम का एक तीसरा गीत है 'रंग रसिया'। गुजराती गीत शैली पर ढला यह गीत हिन्दी के वैविध्य में प्रान्तीयता के रंगों का स्वागत करता है। संगीतज्ञ कवि ने विरह गीत को संगीत के सहारे विरहिणी के मनोभावों को व्यक्त कर नया जामा पहनाया है। पुराने कवि विरह के उद्दीपन के लिए बारह महीनों का, छः ऋतुओं का आयोजन करते थे। पर 'रंग रसिया में' विरहानुभूति को संगीत के उपकरणों से जोड़ा गया है। कवि ने 'षडज, ऋषभ, धैवत, निषाद, गांधार, मध्यम और पंचम के सात स्वरसप्तकों के साथ धिनगिन, तिनगिन, किटतक–गदगिन, नादिर नादिर तोम दिर दिर दिर' के तालों को मिलाकर कविता को संगीत से सँवारा है। यहाँ एक ओर वाद्ययंत्र है तो दूसरी ओर नृत्य

के थिरकते चरण हैं। यह अपने आप में एक अभिनव प्रयोग है। नृत्य, संगीत और साहित्य यहाँ त्रिवेणी है।

पंचम पिक–कूजन है मेरा। धवैत धवल हास है तेरा,

सब सपने हों साकार, मीत मन बसिया।[३६]

'मगर तुम न आये' कविता विरही हृदय का आधुनिक उपालंभ है।

मैंने। तुम्हारे लिए। यह सब क्यों किया।

तुम से तो। ये बगुले अच्छे हैं,

जो मेरे तट पर। झख मारा करते हैं।[३७]

विरहणी ने स्त्रोतस्विनी से सरोवर बनना स्वीकारा। पर नायक नहीं आया और उसकी खीझ, उसका उपालंभ इन शब्दों में प्रतिबिम्बित हुआ। यह आधुनिक स्थिति में पुरानी विप्रलब्धा है। सम्भवतः कवि भी प्रेम में एक निष्ठता का हिमायती है। 'यदि तुम होते केवल मेरे' कविता जीवन को जटिलता के मूल में इसी विडम्बना को पाती है। यदि एक नारी का एक नर से ही प्यार होता तो संसार में सरलता का सम्राज्य होता –

यदि एक नर। किसी एक नारी का होता

और नारियाँ एक–एक। नर में रत होतीं

तो जीवन की परिभाषा। न जटिलतर होती।[३८]

लेकिन सृष्टि–कर्म अलग से चला। उसने लोहे और चुम्बक को आमने–सामने रख दिया। जहाँ संवादी स्वर था वहाँ विसंवादी तत्व दाखिल कर दिया। इससे सारे मानदण्ड बदल गए इसीलिए अब सभी तृप्तियों में तृष्णा है –

**पाण्डव हैं नर सभी। और नारी कृष्णा है।**

संसार के दाम्पत्य मे, इसलिए, आज 'न रातें नीलम की है और न दिन हीरे के', 'न दिन चमकता है और न रात गहराती है', 'अलविदा' में यह भाव-धारा और भी स्फीत हुई है। कवि जरा और गहरे जाकर बताता है कि यहाँ प्रेम परिताप में बदल जाता है वहाँ वह अभिशाप है और जहाँ वह आह्लाद् का रूप धारण कर लेता है वहाँ वह वरदान है।

**पाप है परिताप को जिसके किए**

**औ' पुण्य वह जिसके किए आह्लाद हो।**

**ऊर्ध्वगामी ही प्रिये। पावन जगत में**

**अधोमुखता ही जगत में पाप है।**[३९]

पाप और पुण्य, परिताप और आह्लाद का यह विधान वास्तव में महाभारतकार व्यास के इस कथन-परोपकारः पुण्याय, पापाय परपीडनम्- की याद दिलाता है। कवि का दार्शनिक मन इसी विधान के आलोक में प्रेम के अभिशापत्व और वरदानत्व की व्याख्या करता है। 'प्रतिश्रुत पुरुरवा' कविता में भी कवि का दर्शनिक मन नर-नारी के प्रेम के सम्बन्धों को लेकर चलनेवाली सभी कथाओं के मूल में पहुँचना चाहता है। वह जानता है कि आज तक कोई नर अपने आपको नारी के सामने निरावृत्त नहीं कर पाया है और नारी ने भी शैया का मेष हमेशा बलिदान के लिए तैयार रखा है। इस कविता में एक पुराने मिथक के द्वारा नर-नारी के संबन्धों को कवि ने उस परंपरा के साथ जोड़ दिया है जो 'नीलम की रात' और 'हीरे के दिन' में बाधक बन जाती है। कवि ने भारतीय मिथकों को कलात्मक ढंग और गहराई नियोजित किया है।

'संवत्सर' कविता में औपनिषदिक ढंग से काल–चक्र के दोहन की बात कही गई है। पुराने हिन्दी काव्य में इस ढंग के प्रयोग है। पर आधुनिक काल में इस प्रकार के प्रयोग कम हुए हैं। प्रस्तुत कविता में एक वर्ष को बछड़ा, ३६५ दिनों को गायें, ऋतुओं को ६ बालक, १२ महीनों को बारह आरोंवाला चक्र, शुक्ल और कृष्ण पक्ष को काले, सफेद धागे, रात–दिन को वृद्धाएँ और समय को तांत कहकर लक्षणा का बृहद् प्रयोग किया गया। बड़ा सुन्दर सांग–रूपक है।

'चाँद–चाँदनी और कैक्टस' कविता इस संकलन की शीर्ष कविता है वास्तव में यह कविता बड़ी प्राणवान कविता है जो अर्थ के कई स्तरों को अपनी तीक्ष्णता से भेदती है। आज चाँदनी अपने स्वर्णलोक को छोड़कर इधर–उधर भटकती हुई अपना आश्रय ढूँढ़ रही है। उसकी इस नादानी पर सारा मृत्युलोक हँस रहा है। उस पर ताने मार रहा है, चुटकियाँ दे रहा है। शायद उसको बेवफा भी कह रहा है –

**कल रात। गगन की अट्टालिका पर**

**चाँद को सोया छोड़**

**चाँदनी धरती पर उतर आई।**[४०]

बेचारा चाँद उसे खोजने आया। पर लोग कब चूकने वाले थे। उन्होंने कह दिया– चाँदनी कैक्टस के पास है –

**भोर भये –**

**चाँद चाँदनी को खोजने आया**

**तो चकोरों ने यूँ चुगली की–**

**'कल रात कैक्टस का पता पूछती फिरती थी चाँदनी।'**[४१]

चाँद, चाँदनी, गगन, धरती और कैक्टस ऐसे शब्द हैं जो कवि और कविता के संबन्धों की सूक्ष्म अभिव्यंजना करने में समर्थ हैं। आज गगनधर्मी कविता कैक्टसगर्भा बन गई है। इस सग्रह मे इन दोनो परिपार्श्वों का संसार वर्तमान है। अपनी ध्वन्यात्मकता के कारण यह इस संग्रहश्रेष्ठ कविताओं में से एक है। अनेक अर्थछायाएँ इसमें समाहित हैं। कविता प्रणयत्रिकोण को भी व्यंजित करती है और सामंती और समाजवादी दृष्टिकोण को भी।

नागरजी की कविताओं में जहाँ यथार्थ के स्वर हैं वहाँ कोरी निराशा या घृणा नहीं है उन सबको लाँघकर लोककल्याण और मानव की श्रेष्ठता की दिशा का उद्घोष भी वर्तमान है। डॉ. नागर की रचनाधर्मिता में मानवीय उत्कर्ष का पहलू सबसे अधिक उजागर हुआ है। उनके गीतों में लोकगीत और संगीत के तत्वों का सुन्दर समन्वय हुआ है।

'प्रम्लोचा' प्रबन्ध काव्य मनुष्य के देवत्व प्राप्त करने की एकान्तिक तपः साधना और उसके सांसारिक रागात्मकता में आकंठ-निमग्न होने की कथाओं के तन्तुओं को लेकर चला है। हमेशा यह प्रश्न उठता रहा है कि संसार में जीवन की सार्थकता का आधार क्या है? भोग या त्याग, एकान्तिक तपश्चर्या या गला डूब भोगोपभोग। मनुष्य तप और त्याग के लिए संसार से क्यों विमुख होता है? फिर वह जब अपने तप और त्याग से देवत्व से स्पर्धा करने लगता है तो उसे क्यों धरती की ओर धकेला जाता है? यह एक सनातन पहेली है। देश-विदेश की मनीषा ने समय समय आख्यान और उपाख्यानों के द्वारा इसका उत्तर देने का प्रयास किया है। भारतीय पुराण-कथाओं में विश्वामित्र और मेनका का आख्यान दुष्यन्त के हाथों 'भरत' के लिए शकुन्तला को पकड़ा देता है, तो पुरुरवा को 'आयु' देकर उर्वशी चली जाती है। जहाँ भोगोपरता भी उपरामता लाती है वहाँ साधना भी उच्च स्तर पहुँचकर प्रत्यावर्तित होती है। अनेक पुराणों में इस तथ्य को लेकर

अनेक आख्यान पचे गए हैं। महर्षि कण्डु और अप्सरा प्रम्लोचा का आख्यान भी इसी कोटि का है। नागर जी ने इस पुराने आख्यान में जीवन को एक नया मोड दिया है।

कण्डुमुनि को उनके गुरु तपस्या के लिए एकान्त में छोड़ देते हैं। कण्डु की उग्र तपस्या उन्हें अनेक सिद्धियों का स्वामी बना देती है। उनकी तपोवृद्धि से इन्द्र डर जाते हैं और उनके तपोभंग के लिए प्रम्लोचा अप्सरा को भेजते हैं। अप्सरा के रूप-सौन्दर्य से कण्डु ऋषि का पार्थिव तत्व अभिभूत हो जाता है। वे तपः साधना भूलकर तनु-आराधना में निमग्न हो जाते हैं और आठ सहस्त्र वर्ष चार प्रहर की तरह बिता देते हैं। अचानक कण्डु की संस्कार-चेतना जागृत होती है और वे आत्मग्लानि से भर जाते हैं। वे मानते हैं कि सारा दोष प्रम्लोचा का ही है। इस दोषारोपण से भीत प्रम्लोचा कामोपभोग के फल को स्वर्ग की ओर छलांग मारकर पदपों में बिखेर देती है। इस विखरन से 'मारीषा' का जन्म हुआ जो आगे चलकर प्रचेताओं के माध्यम से सृष्टि-प्रवर्तन का कारण बनी। यही पौराणिक कथा है जो इस प्रबन्ध काव्य का आधार है।

कवि ने कथा-कंकाल में अपने कल्पना-वैभव और मानवीय संवेदना से नये प्राण भर दिये हैं। कवि ने कथा की गति को 'प्रादुर्भाव', 'प्रणय' और 'प्रत्यभिज्ञान' शीर्षक तीन सर्गों में विभाजित किया है। कथा का आरंभ ब्राह्मवेला के प्राकृतिक सौन्दर्य से होता है। कण्डु मुनि अपने नित्यकर्म-स्नानादि क्रियाओं के लिए गोमती के तट पर पहुँचते हैं। स्नान करके सूर्य को अर्ध्य देने के लिए जैसे ही आकाश की ओर उन्मुख होते हैं, उनकी दृष्टि मे एक ज्योति-विहंगिनी धरा पर उतरती हुई दिखाई देती है। वह प्रम्लोचा है। ज्यों ज्यों वह निकट आती है, कण्डु विस्मित होते जाते हैं। वे जिज्ञासावश उसे पूछते हैं, ''तुम कौन हो?'' प्रत्युत्तर में प्रम्लोचा प्रतिप्रश्न करती है, ''आप कौन हैं?'' कण्डु मुनि उत्तर देते हुए कहते है - ''मैं कौन हूँ? यह जानने की साधना कर रहा हूँ। इस विजन में और

सब विस्मृति की ओट में छिप गया है। केवल इतना याद है कि मेरा नाम कण्डु था, क्योंकि मेरे गुरुजी इसी नाम से पुकारते थे मुझे।'' प्रम्लोचा कण्डु मुनि को धन्यवाद देती है कि वे अपने आप को पहचानने की कोशि कर रहे हैं। प्रम्लोचा मुनि के आस-पास फैली हुई वनराजी की प्रशंसा करते हुए कहती है कि मैं इस शोभा से अभिभूत हो कर ही यहाँ सुस्ताने आई हूँ और मन करता है यहाँ से कुछ मनोहर फूल चुन लूँ यदि आपकी आज्ञा हो। विस्मय-विमुग्ध ऋषि उसे निरखते रहे, मन के आवेग उठने लगे, पर संयम रखकर बोले, ''मैं एकाकी रहा हूँ, शिष्टाचार की व्यवस्था से अनभिज्ञ हूँ। आप यथेष्ट फूल-फल ग्रहण करें और यहाँ कन्द, मूल और फल जो कुछ भी उपलब्ध हैं, उन्हें श्रद्धा के साथ मैं अर्पण करता हूँ।'' कण्डु मुनि अपने इस प्रथम पाहुने से इतने तरलायित हो जाते हैं कि उसमें सत्यं, शिवं और सुन्दरं की एकत्रित छवि देखने लगते हैं। मुनि उत्सुकता से पूछते हैं, ''मैं आपका परिचय अभी प्राप्त नहीं कर सका हूँ।'' उत्तर में आगन्तुक ने कहा, ''मैं नारी हूँ।'' नारी शब्द सुनते ही मुनि उसे अपलक नयनों से विस्मय-विभोर हो कर देखते हैं। आज तक उन्होंने नारी के विषय में केवल सुना ही था, आज उसे प्रत्यक्ष पाकर कुछ और ही अनुभव करने लगे। उन्हें लगा कि नारी की परोक्षता कुछ और प्रत्यक्षता कुछ और होती है।

**किन्तु दृष्टिपथ में आते ही। चुंबक बन जाती है नारी**

**लौह पुरुष खिंचने लगता है। भूल-बिसर कर नीति को।**[४२]

प्रम्लोचा उन्हें प्रणाम कर स्वर्ग को वापस लौटना चाहती है। पर मुनि नारी के आकर्षण-पाश में बँध चुके थे। वे प्रम्लोचा से केवल रुकने का ही अनुरोध नहीं करते हैं, अपितु यह भी ज्ञापित करते हैं कि अब वे उसके बिना नहीं रह सकते हैं। प्रम्लोचा ऋषि

का अनुरोध हँसकर स्वीकार लेती है। ऋषि उसे अपनी कुटिया पर ले जाते हैं। ऋषि के निर्विकारात्मक चित्त में एक प्रक्रिया हुई। इसी का 'प्रादुर्भाव' प्रथम सर्ग का वर्ण्य है।

दूसरे सर्ग में भाव के 'प्रादुर्भाव' का विकास होता है। प्रेम प्रगाढ हो कर प्रणय का रूप धारण कर लेता है। ज्यों ज्यों प्रम्लोचा स्वर्ग वापिस लौटने की इच्छा प्रकट करती है त्यों त्यों कण्डु और लालायित होते जाते हैं और अपने तप की सारी सिद्धियों को प्रम्लोचा के चरणों में न्यौछावर कर सारे आश्रम को नंदनवन बना देते हैं। नर के तप–तेज का यह पहला दर्शन था, जिसका प्रम्लोचा प्रथम बार ही अनुभव कर रही थी। वह समर्पित हो जाती है।

**देखे थे उसने। सुर–असुर। यक्ष–किन्नर। देवाधिदेव**

**किन्तु नर के तप–तेज। वीर्य–विक्रम दर्शन का। यह उसका। पहला अनुभव था।**[४३]

मुनि की विजय–टंकार से प्रम्लोचा अनुगत हो गई, अपने नेत्र–अपांगों से अंगड़ाई लेते हुए वह कहती है :

**आर्य कह रहे हैं तो....। मैं रुक जाती हूँ।**

मुनि प्रम्लोचा का कोमल हस्त–पल्लव थाम कर सघन कुंज में अन्तर्लीन हो जाते हैं। श्रृंगार के आलंबन और उद्दीपनों का भावपूर्ण चित्रण यहाँ अपनी पराकाष्ठा पर पहुँचता है। सौन्दर्य का अद्‌भुत वातावरण प्रस्तुत कर कवि ने संयोग की परितृप्ति का मोहक चित्र व्यंजना के झीने आवरण में प्रस्तुत किया है :

**तृप्तकाम हुआ। तन–तरुवर। देह–वल्लरी के भी।**

**सकल मनोरथ सिद्ध हुए। धरा हो गई**

**मेघ भी। गरज–गरज संतृप्त हुए।**[४४]

इस तरह आठ सहस्र वर्ष बीत जाते हैं।

तीसरा सर्ग 'प्रत्यभिज्ञान' है। रात-दिन, महीने-वर्ष के चक्र घूमते रहे। एक दिन मुनि को बोध हुआ कि प्रम्लोचा को देखते-देखते चार प्रहर बीत गए। अब सन्ध्या-वंदन का समय आ गया है। वे प्रम्लोचा से अपना कमण्डलु और अर्ध्य-पात्र माँगते हैं। प्रम्लोचा हतप्रभ है कि मुनि को आठ सहस्र वर्ष चार प्रहर लगते हैं। क्या बात है? शायद मुनि निद्रा से जाग गए हैं। उनके संस्कार पुनः लौट आए हैं। उसे लगता है कि मनुष्य के संस्कार को हमेशा के लिए कैद नहीं किया जा सकता। मनुष्य की इस चेतना-जागृति से, संस्कारों की वापसी से वह गद् गद् हो जाती है। मुनि के चरणों में मस्तक नवाँकर वह कहती है - ''मुनिवर ! जिस मोह-निद्रा में आप निमज्जित थे उससे आप जाग गए हैं। आप के संस्कार उठ खड़े हुए हैं; इसलिए मैं आपको यह कमंडलु और अर्ध्यपात्र देकर वापस लौट रही हूँ।'' ऋषि पहले की तरह उसे नहीं रोकते। वे कहते हैं ''जाना हो तो जाओ, पर झूठ मत बोलो कि आठ सहस्त्र वर्ष पूरे हो चुके हैं।'' प्रम्लोचा उन्हे तथ्य समझाती है। कण्डु मुनि को जब विश्वास हो जाता है तो वे अपने आपको धिक्कारने लगते हैं। वे अपने पौरुष की निर्बलता पर दुःखी होते हैं। जब वे देखते हैं कि सामने खडी नारी स्वर्ग जाने को उद्यत है तो वे अधिक संतप्त हो जाते हैं। प्रम्लोचा उन्हें ढाढ़स बँधाते हुए कहती है कि जो कुछ हुआ है, वह सनातन नियमों के अधीन हुआ है। अतः अपने आपको धिक्कारो मत -

**जो कुछ हुआ, सहज था। देह-धर्म था। आखिर तुम मानव थे। देव नहीं थे तुम।**

प्रम्लोचा आगे कहती है, ''आपके संस्कारों की जागृति हो गई है। अपनी इन्द्रियों के घोड़ों को कसो और सारथी से कहो कि वह मन की लगाम को काबू में रखे। अब उठो! सृष्टि के संचालन में प्रवृत्त बनो। मैं तो तुम्हें हमारे प्रणय के फल के रूप में 'मारीषा'

दे जाती हूँ। इसे तुम्हारा ज्ञान और मेरा रूप मिला है। यह प्रचेताओं को ब्याही जा कर नई सृष्टि की नव-जननी होगी।'' कण्डुमुनि के चरणों में प्रणाम कर प्रम्लोचा लौट जाती है, पुरुष को पुरुषोत्तम बनाकर।

**नमन। कोटिशः नमन। तुम्हारें पद-पद्मों में। तब थे तुम। केवल पुरुष पूर्ण पुरुष। पुरुषोत्तम हो अब।**

कवि ने इस कथा का चित्रण बड़े मार्मिक कौशल से किया है। एक प्राचीन कथा का ऐसा सुन्दर कलात्मक प्रस्फुटन बहुत कम मिलता है। निश्चय ही प्रम्लोचा प्रबन्ध काव्य भी भारतीयता के मानवीय रूप की परिपूर्णता का निर्देश करता हुआ लोकप्रियता प्राप्त करेगा ही।

लेखक ने स्वयं इस बात पर बल दिया है कि केवल पुराण-कथा का अवतरण करना उसका लक्ष्य नहीं रहा है - ''इस पुराण-कथा के प्रति मेरे आकर्षण का केन्द्रबिन्दु महर्षि कण्डु के प्रत्यभिज्ञान का वह क्षण है, जब वे मोह-निद्रा से सहसा जागे। पौराणिक कथा का प्रतिपाद्य भले ही 'वैष्णवभक्ति और पुरुषोत्तम क्षेत्र का महातम्य दिखाना रहा हो', प्रस्तुत काव्य का हेतु मानव में निहित संस्कारों की सर्वोपरिता दिखाना है। संस्कार ही मनुष्य को महान बनाते हैं। प्रतिकूल परिस्थितियों में भी संस्कारों के धधकते अंगारे, कजला भेल ही जायें, बुझते कभी नहीं। फूँक मारते ही वे पुनः प्रज्वलित हो उठते हैं। संस्कारोदय का यह क्षण ही नर को नारायण बनाता है। प्रस्तुत काव्य में मानव-मन के इस मनोवैज्ञानिक तथ्य को रेखांकित किया गया है कि वह संस्कारों के कारण ही इतर प्राणियों से अलग है और उसके संस्कार ही उसे ऊर्ध्वगामी बनाते हैं, कुछ काल के लिए भले ही वे तिरोहित हो जायें पर समय समय पर वे उदित होकर नर को देवत्व की ओर ले जाते हैं।'' प्रम्लोचा इसी संस्कारोदय की ओर संकेत करती है -

**विधि–विधान से। कर्म, ज्ञान, इच्छादि गुणों का तिरोभाव हुआ था आविर्भाव। हो गया है अब। उन सभी गुणों का। संस्कारोदय से।**[४५]

इस संस्कारोदय का कारण 'विधि–विधान'है। विधि–विधान की व्याख्या करते हुए हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि डॉ. कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह कहते हैं – ''इन्द्रदेव दिव्य प्रकाश के प्रदाता और विचार–शक्तियों के अधिपति हैं। वे ही कंडु की एकांगी और अपूर्ण तपश्चर्या को सृष्टि के विकास में सहयोग प्रदान करनेवाली एक निश्चित लोकमंगलकारी दिशा की ओर मोड़ देते हैं।'' .... आध्यात्मिक पूर्णता के लिए जीवन और प्रकृति में आत्मा के ज्ञान का विकासशील उत्कर्ष का संपादन आवश्यक था। इस शास्त्रीय मर्यादा की उपेक्षा के कारण कंडु को प्रत्यभिज्ञा के लिए आठ सहस्त्र वर्ष लगे। इस विधि–विधान की पूर्ति होते ही कंडु जाग उठे। प्रम्लोचा फिर कहती है –

**तुम नहीं चेते। चेती थी वही चिनगारी।**

**धधक उठे हैं उससे ही। चिर–संचित संस्कार तुम्हारे।**

**स्व स्वरूप का बोध। प्रत्यभिज्ञान। हो गया है अब तुमको। – (प्रम्लोचा)**

इसी बात को अपना समर्थन देते हुए सुप्रसिद्ध कवि श्री नरेश मेहता कहते हैं – ''वस्तुतः मनुष्य मात्र इसी प्रक्रिया के द्वार आक्षण देवत्व की ओर अग्रसर है। जब मनुष्य देवत्व की लालसा से संसार के रूप, गंध, स्पर्श आदि पदार्थों को ठुकरा कर सृष्टि के विधान में अवरोध पैदा करता है तो ऋत का चक्र उसे उसे संयमित कर अपनी धुरा पर उसे आरूढ़ करने पर बाध्य कर देता है।''

कवि ने इस कथा को पौराणिकता के परिवेश से निकाल आधुनिक संदर्भों के साथ जोड़ इसे मानवजीवन की एक गरिमामय कथा के रूप में विकसित किया है। इसलिए

उनके इस कथन में सत्य निहित है कि, 'यह काव्य पौराणिक होते हुए भी पौराणिक नहीं है और आधुनिक न होते हुए भी आधुनिक है।' यह बात तब और स्पष्ट हो जाती है जब हम इस काव्य के पात्रों की ओर निगाह करते हैं। कण्डु ऋषि पुराने ऋषियों की तरह आत्मबोध के पश्चाद् मोक्षकामी न बनकर समष्टि–साधना के क्षेत्र के लिए उत्सर्गित हो जाते हैं। वे प्रम्लोचा को शाप न देकर उसके द्वारा प्रदत्त दायित्व को स्वीकार कर नवसृष्टि के पोषण की जिम्मेदारी ले लेते हैं। प्रम्लोचा भी केवल इन्द्रानुशासित अप्सरा की तरह तपोभंग का हथियार नहीं बनती है। वह सदियों की छुई–मुई नारी नहीं है, बल्कि प्रगल्भ बुद्धिमती नारी है जो अपनी सत्ता को नर की सत्ता से उत्कृष्ट समझती है। वह नारी–गौरव की प्रतीक है। वह ज्ञानी कण्डु से विराट और ओजस्विनी है। उसकी आवाज में शक्ति के स्वर मुखरित हैं। प्रत्यभिज्ञान के क्षणों में भी वह लाचार कण्डु को जीवन की महत्ता बताकर सृष्टि–कल्याण के लिए प्रोत्साहित करती है –

**छिन्न करो। अपनी सब कुंठाएँ। उन्मुक्त करो।**

**अन्तर के रुद्ध द्वार व्यष्टि साधना छोड़। समष्टि का हित करो तपस्वी। – प्रम्लोचा**

यही हैं परिस्थितियों को उदात्त मोड़ देनेवाली नियंता नारी के स्वर। वह एकान्तिक तपस्या में रत नर को और भौगविलास में डूबे पुरुष को उपदेश देती है, ''धर्मार्थकामं सममेव सेव्यम।'' धर्म मनुष्य के आचरण का समष्टि रूप है, अर्थ सांसारिक क्रियाकलापों का आधार है और काम संसृति का अधिष्ठान। इन तीनों को एक रूप बनाकर संसार के रथ–चक्र का संचालन करना ही ऋत का परिपालन है। प्रम्लोचा नारी को नर से अधिक सक्षम बताती है –

**नारी तो। शक्ति का। अजस्त्र स्त्रोत है।**

**कारयित्री ऊर्जाएँ। प्रतिभाएँ भावयित्री।**

सर्जक होने के नाते। प्रकृति प्रदत्त है उसको।

तन मन दोनों में। नारी नर से। बहुत अधिक सक्षम है।

– प्रम्लोचा

इस प्रबन्ध काव्य का दार्शनिक पक्ष जितना सबल और सूक्ष्म है उतना ही भावपक्ष सौन्दर्य–मंडित और कलापक्ष समृद्ध है। प्रकृति–वर्णनों की अद्‌भुत अनुपम छटा सर्वत्र मिलती है। गोमती का प्रातःकालीन तट–सौन्दर्य, आकाश से अवतरित होते तेजपुंज का मनोमुग्धकारी वर्णन और फिर षटऋतुओं का आह्लादक आगमन मन में एक संतृप्ति अर्पित कर देता है –

**हे सुनयने। रतनारे ये तुम्हारे नयन। झील की गहराइयों से भी गहन हरिण से भोले। सलोने खंजनों–से। सुधा से सित और ये। अरुणिम सुरा–से। गरल से श्यामल बरन। प्रिये, तुम्हारे ये नयन।** – प्रम्लोचा

कथन की भाव–भंगिमा 'अमिय हलाहल' के साथ 'झील की गहराइयों' के नये–पुराने प्रतिमानों को एकत्र कर मन की आह्लादकता को और भी बढ़ा देती है। कवि ने अपने शिल्प में संगीत और चित्रकला का ऐसा सुन्दर समन्वय किया है कि उनकी कविता के दृश्य और श्रव्य दोनों पत्र समृद्ध होकर निखरे हैं –

**गोधूलि हो चली। अंशुमाली ने। प्रिय प्रतीची के। मुख पर मल दी रोली। आम्रकुंज में। छिपी हुई काली कोयल। सहसा पंचम में बोली और निशा ने। निशानाथ की अगवानी में। बिखरा दी। तारों की झोली।** – प्रम्लोचा

पारंपरिक अलंकारों के उपयोग से भावों का उत्कर्ष ही कवि का अभिप्रेत रहा है। शब्दों का चयन कवि ने प्रसंग और भावों आनुसार ही किया है। संस्कृत के शब्दों ने

सांस्कृतिक गरिमा का एहसास कराया है। नागरजी ने हिन्दी की गद्य एवं पद्य दोनों ही क्रियाओं में आधिकारिक रूप से लिखा है। वह जितने सक्षम रचनाकार हैं, उतने ही उत्कृष्ट विद्वान वक्ता भी हैं। भाषा पर अभिजातीय ओज का प्रभाव तथा प्रस्तुति मे वैदुष्यपूर्म आभा का आकर्षण उनकी वाणी की विशिष्टता है।[४६]

**अविनाश श्रीवास्तव :**

युगीन संचेतना से संलग्न वरिष्ठ कवियों की श्रृंखला में अविनाश श्रीवास्तव का नाम भी रेखांकित किया जाता है। गीत, नई कविता, समीक्षा आदि विविध रूपों में इन्होंने साहित्य सृजन किया है। आधुनिक बदलाव और परिवर्तित जीवन मूल्यों को उद्घाटित करने के लिए वह सदैव तत्पर रहे हैं। भावना मेहता के विचार से – ''समग्र दृष्टि से देखने पर हम पाते हैं कि जहाँ एक ओर अविनाश की कविता संवेदनाओं और भावनाओं को रूपायित करती है वहाँ उनके व्यक्तित्व और उनके वैचारिक मानस की संवाहिका भी है। अविनाश विचार कविता के प्राणवान कवि हैं। हिन्दी काव्य के इतिहास में विचार–कविता की जो धारा प्रवहमान हुई उसमें अविनाश का अपना स्थान है। अविनाश की कविता बौद्धिकता की छाया में विकसित हुई है, इससे इनकी कविता में विचार–कविता की प्रमुख विशेषताएँ प्रभावात्मक रूप से उभरकर सामने आती हैं – अभिशप्त एवं संत्रस्त मानव की समस्याओं का यथार्थ चित्रण, शैलीगत नावीन्य और नये नये अर्थों को ध्वनित करनेवाला अभिनव प्रतीक–विधान। वस्तुस्थिति की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति का एक उदाहरण देखिए–

**'यहाँ अपराध के हर देवता**

**का रूप है सुंदर**

**यहाँ हर प्यार धोखा है**

यहाँ संबंध नफरत के.....'[४७]

युगीन यथार्थ से साक्षात्कार और उससे जन्मी व्यर्थता की त्रासदी का चित्रण करते हुए अविनाश ऐसे प्रतीकों एवं बिम्बों का चुनाव करते हैं कि कविता की सम्प्रेषणीयता प्रभावी हो उठती है :

''अंधी गलियों में भटक भटक

मैं अपना सब कुछ हार गया

* * *

सतरंगी वादों के दलदल में

अब मेरी श्रद्धा के साथी

खुश फहल इरादों के जंगल

अब मेरी तृष्णा के भागी''[४८]

आधुनिक सभ्यता से भेंट में मिली हुई – जीवन और जगत की विसंगतता, मानव संबंधों की औपचारिकता और कडवाहटों का विशद चित्रण उनके प्रायः प्रत्येक सग्रह में पाया जाता है – ''छूटे तट बन्धों पर पुनः'' संग्रह में –

'यहाँ हर चीज बिकती है।

यहाँ हर जाम खाली है।' – अविनाश

और 'पिछली बहार के सुरजमुखी' में –

'कहने को सब कुछ बिकता है, इस दुनिया की हाट में–'

'जीवन की हाटों में बिकते सपने, श्रद्धा–पूजा के पल।' – अविनाश

यांत्रिक–युग में जहाँ स्वार्थपरक भौतिक ऐश्वर्यों की महत्ता है, मानवीयता का अभाव है, जीवन–मूल्यों की व्यर्थता है, वहाँ कवि की वाणी में आक्रोश है :

'इस

घर की

नीवें

कब की

ढह गई हैं

और

हमारी जिन्दा लाशें

बे–बुनियादी

आदर्शों के

मलवे के नीचे

सड़ रही हैं' –[४९]

श्री 'रावी' कहते हैं – 'अविनाश जीवन के मूल्यों के प्रति जागरूक एक संवेदनशील साधक हैं।' मूल्यों का ह्रास और उससे जन्मी बेचैनी तथा उससे उबरने की छटपटाहट अविनाश की कविता में है। अविनाश की अनेक कविताओं की काव्यप्रेरणा का उत्स समकालीन वातावरण रहा है। अविनाश ने इस वातावरण से बचने का भरसक प्रयत्न कयि है पर उन्हें निराशा ही मिली है। इससे अविनाश की कविता में कहीं वैकल्यजनक निराशा का स्वर है, तो कहीं जिन्दगी को एक बार अपने ढंग से जी लेने का आह्वान, तो

कहीं आशा की क्षीण प्रकाश–रेखा। परन्तु अविनाश के काव्यों में टूटते–दरकते संबधों की यंत्रणा, मनकी रिक्तता और हताशा की अनुभूति के स्वरों की बहुलता है।

'सिसक रहा न जाने क्यों
हरेक दिन का हर पल'

* * *

'थक चुका बुझा हुआ
प्राणों का शतदल'

* * *

'विष वमन कर रहा काल व्याल ये
और शिव का कहीं पता ही नहीं'
'खो गया रास्ता नीड़ उजड़े हुए
नींद रूठी हुई, स्वप्न टूटे हुए
एक उबा–सा मन, एक हारा सा तन
अब संभलता नहीं लाख करके जतन।' – अविनाश

ऐसा कहा जा सकता है कि अविनाश के अनेक काव्य निराशा के बहुआयामी चित्र से हैं।

सन् '७१ से '८१ तक के संग्रहों की कविता–नयी कविता की समकालीन है पर उसमें इस दशक के कवियों की तरह यथार्थ से टकराते या जूझने का वह संकल्प नहीं है जो समकालीन कवियों की रचनाओं में पाया जाता है।

युगीन विडम्बनापूर्ण स्थितियों को भोगते हुए भी भविष्य के प्रति समकालीन कवियों में जो विश्वास, निष्ठा और जूझने तथा टकराने के सशक्त स्वर है उससे विपरीत अविनाश की कविता में निराशा का घना अंधकार है। वे यथार्थ से हताश हैं, हार गये हैं, थक गये हैं –

**'बहुत थका हूँ मुझे आज तुम अपने पास बुला लो**

**आँचल के सायें में अपने मुझको आज छुपा लो'**[५०]

और कभी –

**'हार गये आस्था के पैगम्बर**

**सिकता ने सागर को सोख लिया**

**हर निश्चय संदेहों के विषधर**

**तट ने हर लहरों को मौत दिया'**[५१]

यांत्रिक सभ्यता ने विवशता का जो जाल बुना है, अलगाव को जिस तरह बढ़ाया है, संवेदनाओं को जिस तरह कुचला है, विश्वास, निष्ठा तथा जीवन–मूल्यों को जिस रूप से खदेड़ा है, उसकी प्रतिक्रिया अविनाश की काव्यसृष्टि में आद्यान्त विविध आयामों द्वारा प्रकट हुई है। इससे अविनाश की कविता में थकान और पलायन के भाव बार–बार मुखर हो उठते हैं –

**'और चलो चल कर बसा लें**

**आज ऐसे, एक फिर दुनिया'**

* * *

'जहाँ सूर्यास्त की किरणों में

नीड़ों का बसेरा हो

जहाँ पलकों की छाया में

किसी का नेह–सम्बल हो'[५२]

अविनाश की काव्यसृष्टि का एक पहलू है विचार–कविता का जो वैचारिक बोध के साथ वर्तमान जीवन के कटु यथार्थ को प्रकाशित करता है। इसमें जीवन–मूल्यों की तलाश है, तो दूसरा पहलू है, उनकी रोमानी–भावोर्मियुक्त कविता का। जो मानव एवं प्रकृति के प्रति उनके राग–तत्व को उजागर करता है और प्रकृति के विविध रूपों के सौंदर्य को रेखांकित भी। '९४ में प्रकाशित अविनाश का काव्य–संग्रह 'परिवेश गगन बदले क्षण–क्षण' के अधिकांश काव्य कवि के प्रकृति–प्रेम के प्रमाण है।

'परिवेश गगन बदले क्षण–क्षण' की अधिसंख्य कविताओं की प्रेरिका प्रकृति है। प्राकृतिक सौंदर्य से अभिभूत कवि की वाणी प्रकृति के क्षण–क्षण परिवर्तित गगन के मनोरम्य चित्र अंकित करती जाती है – एक के बाद एक प्रकृति केरूप, रंग, गंध के.... हेमन्ती केसरक्यारी, अग्निकुसुम से पलाश, फागुन के मदभर महुवा, अंगूरी आसव, अलसाई संझा, बौराये आम, उन्मुक्त सुगंध लुटाता बसंत, रस भरी बसंती हवा, जेठ की तन्द्रिल दोपहरी, चारों ओर फैलता बवंडर, बरसात की प्रतीक्षा में उद्विग्न धरती, सरिता, पनघट, झील, पोखर.... पुरवा की हवा और उमड़–घुमड़ रस की फुहार बरसाता आषाढ़.... पीले, सिन्दूरी श्यामल घन, दमकती दामिनी, सप्तरंगी इन्द्रधनुष.... और पल पल परिवर्तित गगन की रूपलीला के नित्य नूतन चित्र। मदकता मत्त मौसम में भीगे तन–मन से विभोर कवि मुखर हो उठता है –

'इनता मद कहाँ रहे

इतना रस कौन सहे

पी लेने को छक कर

अपना जब जहाँ मिले'

प्रकृति के बदलते ऋतु–चक्र पर कवि विमुग्ध हैं। प्रकृति के अनुपम सौंदर्य उनके मनको अनुराग से भर देता है। उल्लसित अन्तर्मन की अनुगूंज संग्रह में आद्यान्त व्याप्त है। प्रकृति कभी मानवीय संवेदनाओं से जुड़कर उनके सृजन को उत्प्रेरित करती है तो कभी निरपेक्ष रूप से। कहीं कथ्य की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति के लिए प्रकृति के तत्वों का बिम्बों में सुंदर संयोजन भी किया है –

'भीगे सन्नाटों का यह कैसा आमंत्रण

डूबी संध्याओं का रह रहकर यह कंपन'

'साँसों के मृजल में

भटक रही मन–हिरनी'

वर्षा की सरसता का एक चित्रांकन देखिए :

'पुरवइया, सन....सनन....सनन..... सन

सावन करता है अभिनन्दन

झरता नीर निरन्तर छम छम

रस के पगे हुए हैं कण कण'

* * *

'निष्छल निर्मल पावन ये घन'

* * *

'दादुर, झींगुर मोर हुलस तन

महक उठे फिर से वन उपवन।'

अविनाश के इस संग्रह में प्रकृति के सौंदर्य के रम्य परिवेश के अनेक चित्र अंकित हैं। परन्तु प्रकृति के सौंदर्य से उल्लसित होने पर भी कवि के मन की गहराइयों में अकेलेपन की व्याकुलता है जो उन्हें कचोटती रहती है –

'अपनी निर्वास यात्रा के

अन्तिम पड़ाव में

ठहर गया है एक पतझर

पत्र रहित, छाँव रहित–एक पेड़।'

यह व्याकुलता, यह छटपटाहट, वह विडम्बना शायद आज के युग की नियति है। यहाँ कवि ने प्रकृति के माध्यम से अपने युग की मानसिकता की अभिव्यक्ति की है। उन्होंने अपनी भावनाओं को प्रकृति के प्रतीकों और बिम्बों द्वारा मूर्त करने का यत्न किया है। पतझर को संबोधित करते हुए कवि कहते हैं –

'कैसे कहूँ ओ पतझर !

बसंत अब भी एक संभावना है !'

यही संभावना कवि के निराश अंतरंग में छाये अंधकार का दीपक है।

अविनाश की कविता–सृष्टि का एक निराला पहलू है लोकजीवन की मधुरता और सरसता का लुभावना अंकन। विषय और अभिव्यक्ति दोनों दृष्टि से लोक जीवन के रंगों से भीगे भावों की पुलक उनके गीतों मे है। वर्तमान परिवेश की यांत्रिकता, सामाजिक सबधों की टूटन, मानसिक तनाव की यंत्रणा के विभिन्न रूपों के सफल चितेरे कवि अविनाश ने कुछ ऐसे गीतों को रूपाकार दिया है जो लोक जीवन के संस्पर्श से अविनाश की कविता सृष्टि का उज्जवल पक्ष है। विरहिनी के अंतःजगत को सहजता से मुखर करती ये पंक्तियाँ लोकजीवन की अनुगूंज लिये हैं।

**'बन में खिला पलाश फिर**

**अजहूँ न आयो कन्त**

**बैरिन अब निंदिया भई**

**रात न आयो अन्त'**[५३]

'छूटे तटबन्धों पर पुनः' में ग्रामीण परिवेश के मध्य विरह–विदग्ध नारी के मनोभावों को उजागर करनेवाले मंजुल गीतों की सरसता और प्रेम की पीर की मधुमयी रागिनी के मादक स्वर सुनाई देते हैं –

**'कैसे कजरा लगाऊँ मैं, बिंदिया सजाऊँ**

**कासे कह लूँ मैं मनवा की बतियाँ'**[५४]

'पिछली बहार के सूरजमुखी' में 'फगुनाई संझा की एक घड़ी' एक ऐसा ही सरस गीत है। मनुहारों की मधुरता से छलक उठता यह गीत भावों की मधुरता बिखेरता है।

**'बीते मनुहारों की**

**भीग गई चोली**

सावन में पीहर की

लौट चली डोली'

विष्णु प्रभाकर कहते हैं – 'आपकी कविता में लोक–गन्ध और संगीत रहता है वह सम्प्रेषणीयता को सहज बना देता है।' अविनाश की कविता का शिल्प बहु–आयामी है। कभी अ–छान्दस रूप में तो कभी गेय–गीतों में ढल कर विधागत नवीनता लेकर आती है।

अविनाश ने अपने विचारों के गहन गंभीर मर्म को पाठक तक पहुँचाने के लिए प्रायः अतुकांत शिल्प का प्रयोग किया है। 'समांतर रेखाओं के त्रिकोण' की एक कविता का शिल्प देखिए –

'तन्हाई ! तन्हाई !! तन्हाई !!!

कितनी

विस्तृत

असीम

तन्हाई !

सुरसा के मुख की तरह

द्रौपदी के

चीर की

तरह....'

तन्हाई की असीम और विस्तृत परिधि को 'सुरसा के मुख' की तरह, 'द्रोपदी के चीर' की तरह कहकर जो मूर्त रूप दिया गया है वह कितना सार्थक और प्रभावात्मक है। अपने विचारों और भावों को प्रतीकों और बिम्बों के माध्यम से प्रस्तुत करने में अविनाश सिद्धहस्त है। अविनाश ने प्राचीन कथाओं से पात्रों को उठाकर नये प्रतीकों के रूप मे गंभीर विचारों का वाहक भी बनाया है –

**'नहीं चाहूँगा**

**कि फिर कहीं**

**विरक्ति की मंथरा**

**जन्म ले सके**

**जिसके षडयन्त्र से**

**कोई कैकेयी अपनी सुहाग और**

**कोख खो बैठे !'**

अविनाश के बिम्ब में प्रकृति के विभिन्न तत्वों का प्रयोग हुआ है इससे ये बिम्ब सशक्त, सरस और जीवन्त लगते हैं। अनुभूतियों की सघनता और मार्मिकता प्रकृति–बिम्बों के प्रयोग से प्रभावी रूप से अभिव्यंजित है। जैसे, 'हँसता गुलमहोर', 'दुल्हा बना कनेर', 'हाँफते सपने सुस्ता रहे हैं – पेड़ के नीचे', 'ढो रही हैं कोंपलें फिर भास्कर का शव', 'झुलस गये गंधों के चन्दन वन'।

अविना के भाव कभी प्रगीतों में कभी गीतों में मुखर हुए हैं, उनके गीतों में लयात्मकता है, मधुर शब्दावली की संरचना है, भावों की चारुता और संगीत की मादक झंकृति है। 'परिवेश गगन बदले क्षण क्षण' का एक गीत है –

'चैता तक आये न पिया

फगुआ गुलाल को

तरस गया जिया

चैता तक आये न पिया.....'

सरल, सहज अभिव्यंजना से सने ये गीत अन्तस् को छूते हैं। अविनाश के गीतों में संगीत है, मिठास है, नवीनता है और ताजगी है।[५५]

अविनाश लोक से हटकर अपनी बात कहने में माहिर हैं। वैचारिक दृष्टि से वह किसी आप्त वाक्य के मुखापेक्षी न होकर अपनी बात अपने ढंग से कहने को पक्षधर हैं।

**किशोर काबरा :**

गुजरात के वर्तमान हिन्दी साहित्यकारों में किशोर काबरा का नाम सम्मान के साथ अग्रगण्य है। गीत, कविता, ब्रजभाषा-छन्द, हाइकू, मुक्तक, प्रबंध काव्य, महाकाव्य, समीक्षा, ललित निबंध आदि विविध विधाओं में इन्होंने बहुत ही स्तरीय और सम्पन्न सोच से सम्पक्त होकर लिखा है। गुजरात में हिन्दी प्रसार और प्रचार की अहम भूमिका में ही आपका सहयोग उल्लेखनीय रहा है।

डॉ. महावीर सिंह चौहान ने लिखा है कि ''जाहिर है कि जब कविता एक फसल बन जाती है तो उस फसल पर सबका अधिकार बन जाता है। अधिकार यह भी हो जाता है कि हम उसकी महत्ता उसकी गुणात्मकता को परखें। व्यापक मानवीय संदर्भ में उसकी अर्थवत्ता की पड़ताल करें। पाठक और आलोचक यही काम करते हैं। पाठक कविता के कला-मूल्यों और उसके अन्तर्निहित जीवन-मूल्यों को ग्रहण करता है लेकिन उसकी संवेदना और बोध का विस्तार उसके निजी आत्म-विस्तार या आत्मा-परिष्कार तक ही

मर्यादित रहता है। इसके विपरीत आलोचक की भूमिका मे एक प्रकार की मुखरता होती है। वह कविता से प्राप्त अनुभव के विश्लेषण द्वारा दूसरों को भी उसमें हिस्सेदारी करने के लिए आमंत्रित करता है। आलोचक द्वारा किया गया कविता का विश्लेषण स्वय कवि के लिए भी उपकारक सिद्ध होता है। अपनी कविता की आलोचना में कवि अपने ही आत्मबिम्ब का प्रतिबिम्ब देखता है। इस समग्र प्रक्रिया में उसके अंदर एक भिन्न प्रकार की आत्म–सजगता पैदा होती है, और उसके आत्म–परिष्कार को संभव बनाती है। इस प्रकार उसकी काव्य–यात्रा अधिक विकासोन्मुख बनती है। किशोर काबरा में गहरी भावात्मक ऊर्जा है। उनकी अभिव्यक्ति का स्वरूप एकदम विस्फोटक है। जैसे उनके हृदय में संवेदनाओं का ओरछोर–हीन समुद्र लहराता रहता है और वह सब कुछ को – विचार, कल्पना मूल्यबोध को आप्लावित किए रहता है। यूं उनकी कविता संवेदना के एक निश्चित बिंदु से आगे बढ़ती है, लेकिन कविता के विकास के साथ वह बिंदु खोने लगता है। उस एक अनुभव में अनेक अनुभव जुड़ने लगते हैं। कवि जैसे एक ही कविता में सब कुछ कह डालने के लिए बैचेन हो उठता है। प्रबंध रचनाओं में जहाँ कहीं कवि के अनुभव का कोई मार्मिक बिंदु उभरता है कि वह उसके एक के बाद एक अनेक कोण उभारने लगता है। प्रबंध रचना अपनी विधागत मर्यादाओं का अतिक्रमण कर मुक्तक की सीमाओं को छूने लगती है। इससे होता है कि कवि को अपनी अनुभूति की अभिव्यक्ति का आन्तरिक तोष तो मिल जाता है, लेकिन रचना में एक प्रकार की अपूर्णता बनी रहती है। यह नहीं कि कवि अपनी रचनाशीलता की इस मर्यादा को समझता न हो। 'हाशिये की कविताएँ' की भूमिका में उसने लिखा है – 'बड़ी कविताओं के कुछ अंश भी क्षणिकाओं जैसे ही स्वतंत्र रूप से जी सकने योग्य हैं।' यदि वह नहीं समझता है तो केवल यह कि उसकी रचना का यह 'वैशिष्ट्य' ही एक स्तर पर उसकी रचना को कमजोर बनाता है।

इस समस्या पर हम दूसरे ढंग से विचार करें। जब हम यह कहते हैं कि आलोचना रचना के परिष्कार में सहायक बनती है तो हमारा आशय यह नहीं है कि रचना के बारे मे व्यक्त किए गए आलोचक के अभिप्रायो को कवि या सर्जक जस का तस स्वीकार कर लेता है, या कि उसे ऐसा करना चाहिए। इस प्रकार का आचरण तो रचनाकार की सर्जक प्रतिभा के अभाव का सूचक माना जाएगा। वास्तव में इससे रचना की कोई समस्या सुलझती भी नहीं है, लेकिन यह अवश्य होता है कि आलोचना रचनाकार में एक द्वन्द्व अवश्य जगाती है। यह द्वन्द्व रचना के लिए उपकारक सिद्ध होता है। किशोर काबरा की कविता में ऐसा कोई द्वन्द्व नहीं है। इतना ही नहीं वे इस रूप में रचना के लिए द्वन्द्व को आवश्यक भी नहीं मानते। उनकी मान्यता कुछ–कुछ निम्न प्रकार से है :

**शब्द और अर्थ में**

**तो**

**बीज और वृक्ष का संबंध है,**

**उनमें एक–दूसरे को**

**पालने–पोसने का अनुबंध है।**

**बीज से वृक्ष,**

**वृक्ष से बीज,**

**बीच में सरल रेखा है**

**न कोई तनाव,**

**न कोई खीज !** – किशोर काबरा

यह एक आदर्श स्थिति है और किसी भी रचनाकार के लिए स्पृहणीय भी है, लेकिन आज यह सब संभव नहीं रह गया। पहले रचनाकार और पाठक–आलोचक के बीच के संबंध को ही लें। इसकी सहजता समाप्त हो गई है। इन दोनों के बीच अब वैसा सीधा संबंध नहीं रह गया। कैसा विरोधाभास है कि दोनों के बीच भाषा एक दीवार बनकर खड़ी हो जाती है। अज्ञेय ने 'तार–सप्तक' की भूमिका में संप्रेषण की समस्या पर विचार करते हुए भाषा के इसी संकट की ओर संकेत किया था। यानी समस्या यह है कि सर्जक और पाठक–आलोचक के पास भाषा एक ही है लेकिन दोनों के शब्दों का अन्तर्निहित अनुभव–विश्व एक नहीं है। ऐसे में दोनों के बीच टकराव पैदा होता है। यह टकराव जहाँ एक ओर पाठक–आलोचक को नए भाव–बोध से जोड़ता है, उसकी मानसिकता को बदलता है, वहीं दूसरी ओर पाठकीय–आलोचकीय प्रतिक्रियाएँ रचनाकार को भी भाषा के साथ मौलिक ढंग का आचरण करने के लिए बाध्य करती हैं।

इस द्वन्द्व का एक अन्य स्तर भी है। आज कवि शब्द और अर्थ के बीच, अनुभव और अभिव्यक्ति के बीच एक दरार का अनुभव करता है। 'जो है' और 'जो होना चाहिए' के बीच उसे एक गहरी और दुलंघ्य खाई के दर्शन होते हैं। अपनी भिन्न प्रकार की मनःस्थिति और जीवन–दृष्टि के बावजूद किशोर काबरा भी आज के मनुष्य की नियति से अपरिचित नहीं हैं। वे अपने सर्जक के जीवन की इस विडम्बना को बखूबी पहचानते हैं। भाषा की अर्थगत असमर्थता का अहसास आज के प्रायः प्रत्येक अच्छे रचनाकार की समस्या है। उसका सर्जन जैसे इस स्थिति के विरुद्ध उठाया गया एक महत्वपूर्ण कदम है। यह निश्चित है कि कवि के पास कोई ऐसी अतिरिक्त क्षमता नहीं है कि वह इस स्थिति को समाप्त कर सके। इस समस्या की जडें तो आज के समाज–जीवन की विसंगतियों में हैं। रचनाकार परोक्ष और कभी–कभी प्रत्यक्ष रूप से भी इन विसंगतियों की ओर सकेत कर

देता है। हालांकि उसका यह कार्य भी कम महत्वपूर्ण नहीं है कि वह भाषा की असामर्थ्य को लेकर बैचेनी का अनुभव करे, अपने पाठक के हृदय में इस संवेदना को जगाए। प्रकारान्तर से यह अपने समय की असगतियों और आन्तर्विरोधों की ओर ही निर्देश है। अपनी सृजन प्रक्रिया के दौरान इस स्थिति के बीच से गुजरते हुए किशोर काबरा लिखते हैं :

**आँख बंदकर**

**मैं अपनी कलम रखता हूँ कोरे कागज पर**

**कुंवारी कल्पनाओं को समर्पण में बाँधने के लिए**

**और फिर आँख खोल कर देखता हूँ–**

**आह,**

**मेरे सड़े गले बासी शब्द ही**

**एक–दूसरे से जुड़े हुए हैं।**

**कितनी सस्ती है मेरी अभिव्यक्ति**

**कितना अपूर्व है तुम्हारा अनुभव !** **– किशोर काबरा**

अपनी रचना के बारे में कवि द्वारा दिए गए ये दो परस्पर विरोध वक्तव्य है। एक में द्वन्द्व का निषेध है और दूसरे में द्वन्द्व की स्वीकृति। यूँ रचना का संसार अपने आपमें इतना जटिल और बहु आयामी होता है कि उसमें परस्पर विरोधी भाव स्थितियों का होना असंभव नहीं कहा जा सकता लेकिन इसको लेकर भी कवि में एक प्रकार का द्वन्द्व होना स्वाभाविक है। दो विरोधी भाव–स्थितियाँ द्वन्द्वमूलक ही हो सकती हैं, किन्तु किशोर काबरा की कविता में इसका सहअस्तित्व है और इनका आपसी रिश्ता अद्वन्द्वमूलक है।

यहाँ जैसे दो संसार हैं, दोनों अपने-आपमें पूर्ण और स्वायत्त। कवि के गीत उसके अन्तःसामंजस्य की उपज है और नगरबोध की कविताएँ द्वन्द्वमूलक हैं। उनके प्रबंध काव्यों के केन्द्रीय तत्व उनकी भावप्रवणता और उनकी अन्तर्निहित गीत-धर्मिता है।

हम यहाँ सर्वप्रथम उनके गीत-काव्य पर ही विचार करेंगे। किशोर काबरा ने गीत अपेक्षाकृत कम लिखे हैं, लेनिक वे अपने गीतों में सर्वाधिक प्रभावशील दिखाई देते हैं। यहाँ उनके भावों में जहाँ एक ओर तीव्र आवेगशीलता है वहाँ दूसरी ओर अभिव्यक्ति के लिए जरूरी आत्मसंयम भी। गीत-रचना में वे अधिक सावधान दिखाई देते हैं। अनुभव और अभिव्यक्ति के बीच के जरूरी सन्तुलन को बिगड़ने नहीं देते। अपने-आपको अनावश्यक विस्तार से बचाए रखते हैं। एक समय था जब नई कविता के पुरोधाओं ने गीत का विरोध किया था। निश्चित ही यह एक प्रकार का अतिवाद था। हालाँकि इस विरोध के लिए वे गीतकार कम उत्तरदायी नहीं माने जाएँगे, जिन्होंने गीत-रचना की सर्जन-धर्मिता को समाप्त कर दिया था। टेक की एक पंक्ति और एक पदबंध अच्छा बना लेने के बाद बाकी के पद-बंधों, उनमें आए बिम्बों एवं प्रतीकों में थोड़ा सा परिवर्तन करके भावों का पैराफ्रेज भर दिया जाता था। इस आसान रास्ते पर चलनेवाले आज भी बहुत सारे गीतकार मिल जाएँगे, लेकिन किशोर काबरा के गीत फार्मूला-बद्ध लेखन से अपने-आपको अलग स्थापित करते हैं। अनुभूति-प्रवणता उनके गीतों की एक अनिवार्य शर्त है।

कवि के बहुत सारे गीत प्रकृति के साथ उसके अंतरंग साहचर्यजन्य उल्लास की व्यंजना करते हैं। प्रकृति के अनन्त सौंदर्य की कवि को अकुंठ पहचान है। पर्त-दर-पर्त एक बड़ी मोहक और संवेदनाशील दुनिया उसके सामने खुलती जाती है और वह जैसे उसमें आकंठ डूबता जाता है। वह हमारे सामने जो दुनिया प्रस्तुत करता है वह एक प्रकार से हमारी जानी-पहचानी हुई दुनिया है। केवल हुआ यह है कि आज के जीवन की

आपाधापी में हमने उसकी ओर से अपनी आँखें बंद कर ली हैं। कवि है कि हमारी कल्पना की आँखों के सामने एक ऐसी दुनिया उभार देता है, जिसमे 'पलकों को मीचे दो पत्तों का अंकुर', 'आकाशी झील के किनारे कजरारे पागल बनजारों की जमात', 'कलियों के भीगे प्राण', 'नीम की सिहरती देह', 'पेड़ों की अंजुरी से रिसती हुई धूप', 'पीपल के पातों की सिहरन', 'आकाशी झील के किनारे बैठे हुए बदराए बनपाँखी', 'ओस से भीगी हुई काजल रातें', 'दहकते हुए टेसू के फूल' हैं। विशेषता यह है कि ये केवल वस्तुएँ नहीं हैं। इनमें कवि की संवेदना का उलझाव है। ये वस्तुएँ केवल विस्मय नहीं जगातीं, बल्कि हमारे हृदय को गहरे तक छूती हैं। आदिम और उद्दाम भावनाओं का एक आप्लावनकारी सैलाब जैसे हमारी चेतना को अपने–आपमें लीन कर लेता है।

आवेगशीलता का यही रूप उनके दो प्रबंध–काव्यों – 'उत्तर महाभारत' और 'उत्तर रामायण' में भी देखा जा सकता है। 'उत्तर महाभारत' की द्रौपदी यौवन के आने के आपने अनुभव को व्यक्त करती हुई कहती है :

कान तक खींची हुई मुस्कान मानो,
श्रवण को फिर से लगा है बाण मानो।
भाल निर्मल गगन–सा, बेंदी उषा–सी,
केश की श्यामल घटा दिखती निशा–सी।
और वेणी एड़ियों से बात करती
क्षितिज तक सौन्दर्य की बरसात करती।
मद किसी ने दूध में धोकर पिलाया,
ताल में जैसे किसी ने स्वर मिलाया।

चकित चितवन, मुदित आनन, थकित बाहें,

कुछ अजानी, कुछ अचीह्नी मुक्त राहें।

स्वप्न जैसे सत्य बनने को मचलता,

सत्य जैसे स्वप्न बनने को उछलता।

एक झूले में हमेशा झूलता मन,

स्मरण करता और उसको भूलता मन।

चार दिन की चाँदनी–सा तरल यौवन,

वारुणी–सा विरल, शिशु–सा सरल यौवन।[५६]

यह द्रौपदी के रूप–सौन्दर्य का एक स्थिर शब्द–चित्र है। उपमान परंपरागत ही है लेनिक चित्र की तराश की रेखाएँ जमीन से आसमान तक के अनेक अलक्षित बिन्दुओं को कुछ इस रूप में जोड़ती हैं कि सौन्दर्य अपनी व्यापकता में अपूर्व लगने लगता है। जब इस स्थिर सौन्दर्य में भावनाओं की तरलता घुल जाती है तो उसमें एक प्रकार की गतिशीलता–सी आ जाती है :

बिजली से, बादल से,

घूँघट से, पायल से,

जंगल को घायल कर डाला

इस बरखा ने।

ढालों की छलछल ने,

नालों की कलकल ने

पोखर को कायल कर डाला

इस बरखा ने।

या

धुल गईं रात शरद की

खुल गए हैं दिन।

आओ,

बैठकर बातें करें दो छिन।

कास फूले बाँस फूले,

बादलों की साँस फूले,

सज–सँवरकर यह धरित्री

तोड़ती है तिन।

हो गया है ताल दर्पण,

बिंब का जिसमें समर्पण,

चाँद लहरों पर उतरता

सीढ़ियाँ गिन–गिन।

आओ,

बैठकर बातें करें दो छिन।[५७]

यूँ ये ऋतुगीत हैं लेकिन इनमें घुलेमिले भावना के रग इनको एक अतिरिक्त दीप्ति प्रदान करते है। 'उत्तर महाभारत' की भाँति 'उत्तर रामायण' में भी कुछ बडे ही मार्मिक गीत है। यहाँ कवि ने शिष्ट और लोक का समन्वय किया है। कहीं-कहीं पर यह समन्वय केवल लय-ध्वनि के स्तर पर है और कहीं-कहीं उसमें लोक-जीवन की अन्तर्लय भी समाहित हो गई है :

१. **हैया हो, हैया रे !**

**तैर चली नैया रे !**

**गंगा की लहरों पर**

**जैसे पुरवैया रे !**

**हैया रे ! हैया रे !**

२. **सिया की गोद भरो,**

**सीमन्त आग या अवधपुरी के द्वार,**

**सिया की गोद भरो।**

**पहला मास लगा सीता को कौशल्या हरखाती,**

**कंगन, हार, करधनी, बेसर हाथों से पहनाती।**

**थोड़े जामुन, थोड़ी अमिया देती कर मनुहार**

**सिया की गोद भरो।**[५८]

ये प्रबंध-रचना में आए दृश्य-बिम्ब हैं। जब ये प्रबंध की केन्द्रीय संवेदना के साथ रचनात्मक संगति में आते हैं तो उसके मूल प्रभाव को सघनता प्रदान करते हैं, लेकिन

जब ऐसे नहीं हो पाता तो उनकी स्थिति सामान्य गीत–रचना की हो जाती है – अपने आसपास के अनुषंगों से मुक्त अपने–आप में स्वयं संपूर्ण एक गीत की। मुझे ऐसा लगता है कि किशोर काबरा की प्रबंध–चेतना गीतधर्मी है। इसकी संवेदना का केन्द्र अपसरित होता रहता है अलग–अलग अनुभवों को संयोजित करने की दिशा में। हालाँकि कवि का यह प्रयत्न रहा है कि वह 'उत्तर महाभारत' और 'उत्तर रामायण' में पौराणिक कथाओं के माध्यम से समकालीन जीवन से जुड़ी अपनी प्रश्नाकुलता को शब्द दे।

'उत्तर महाभारत' में पाँचो पाँडवों और द्रौपदी के महाप्रस्थान और स्वर्गारोहण की कथा है। द्रौपदी के साथ स्वर्गारोहण को निकलनेवाले पाँच पाँडवों में से युधिष्ठिर को छोड़कर द्रौपदी सहित अन्य सभी हिमालय की बर्फ में गल जाते हैं, लेकिन मृत्यु के साक्षात्कार के क्षण में द्रौपदी, सहदेव, नकुल, अर्जुन और भीम की स्मृतियों में न केवल उनका समग्र जीवनानुभव एक रचनात्मक बिम्ब के रूप में उभरता है बल्कि वे सभी तटस्थ दार्शनिक की भाँति अपने कर्म और आचरण का विश्लेषण एवं मूल्यांकन भी करते हैं। आत्मालोचन का यह अंश ही 'उत्तर महाभारत' का केन्द्रीय तत्व और उसकी रचनात्मक उपलब्धि है। महाभारत के इन प्रखर मेधावी पात्रों का यह आत्मालोचन आधुनिक भाव–बोध की उपज है।

'उत्तर महाभारत' में कवि ने पांडवों के स्वर्गारोहण की कथा को एक प्रतीकात्मक अर्थ से जोड़ने का भी प्रयत्न किया है। उसने पाँच पांडवों को पाँच कर्मेन्द्रियों तथा पाँच ज्ञानेन्द्रियों के तथा द्रौपदी को मन के प्रतीक के रूप में ग्रहण करने का आग्रह किया है। एक अन्य स्तर पर द्रौपदी कामवासना की और युधिष्ठिर मनुष्य की अन्तर्निहित आध्यात्मिक अन्वेषणशीलता के परिचायक माने गए हैं। कवि के शब्दों में पाँच कर्मेन्द्रियाँ पांडवों के बहिरंग एवं अन्तरंग हैं। द्रौपदी मन है जो इनसे बंधी रहती है और इन्हें बांधे

रहती है। साथ ही काम जीवन की मूल प्रेरणा है, इसलिए संसार द्रौपदी से प्रारंभ होता है। मोक्ष जीवन का अंत्तिम लक्ष्य है, इसलिए अध्यात्म युधिष्ठिर से प्रारभ होता है। इस तरह द्रौपदी से युधिष्ठिर तक की यात्रा ही स्वर्गारोहण है। ग्रंथ के सातवे और अन्तिम सर्ग में अपनी रचना कैं इस सांकेतिक अर्थ की व्याख्या करते हुए कवि ने लिखा है :

छहों पातक का

तथा उनमें छिपे नरकादिकों का

पातकों से मुक्त साधक में छिपे स्वर्गादिकों का

सब युगों में

सब स्थलों पर

सब जनों का

यह क्रमिक सिंहावलोकन है।

काम का पहले पतन

फिर क्रोध का

फिर लोभ का

फिर मोह, मद, मत्सर

–यही ऊर्ध्वीकरण है।

द्रौपदी का और पाँचों पांडवों का

यह क्रमिक इतिहास है।[५९]

कवि ने युधिष्ठिर को ऊर्ध्वगामी चेतना का परिचायक माना है :

युधिष्ठिर में छिपी है ऊर्ध्वगामी चेतना

संसार पलता द्रौपदी के निकट मूलाधार में

अध्यात्म पलता है युधिष्ठिर के निकट सहसार में[६०]

लेकिन 'उत्तर महाभारत' में रचनात्मकता के स्तर पर युधिष्ठिर का यह रूप कतई नहीं उभरता। अन्य पांडवों की भाँति ही वे भी यहाँ अनेक अन्तर्विरोधों से ग्रस्त दिखाई देते हैं। द्रौपदी के लेखे वे एक व्यक्ति हैं, जिसने अपने व्यक्तित्व के अधोगामी अंश को अपनी कृत्रिम गरिमा के आवरण के नीचे छिपा लिया है :

सारे कष्टों की जड़ अब तक बने हुए हो

ऊपर से वैराग्य ओढ़ते

लेकिन भीतर तक मत्सर से सने हुए हो। – किशोर काबरा

एक स्तर पर द्रौपदी दुर्योधन की तुलना में भी युधिष्ठिर को कुछ कमजोर या हीन पाती है। द्रौपदी उनके तथाकथित धर्माचारण को उनके दंभ के रूप में देखती है :

कौरवों से अधिक

मैं हूँ पाण्डवों पर रुष्ट

दुर्योधन नहीं उतना बुरा

अब तक लगा

जितने लगे ये धर्मध्वज कायर युधिष्ठिर। – किशोर काबरा

'उत्तर महाभारत' में धर्मराज के रूप में एक ऐसे शासक का बिम्ब उभरता है जो धर्म का एक राजनीतिक हथियार के रूप में उपयोग करता है :

देश को जब मर्घटी विश्राम मिलता है,

धर्मराजों को तभी कुछ काम मिलता है।

'उत्तर महाभारत' के सभी पात्रों का व्यक्तित्व खंडित है। सभी पात्रो की स्वीकृत मूल्य-व्यवस्था और उनके आचरण के बीच एक दुर्लंघ्य खाई है। उनके विचार, उनके कर्म और व्यवहार का आधार नहीं बन पाते। इस स्तर पर 'उत्तर महाभारत' के सभी पात्र समकालीन मनुष्य की नियति का साक्षात्कार कराते हैं। यही इस ग्रंथ की रचनात्मक उपलब्धि है।

'उत्तर महाभारत' भी कवि का महत्वाकाँक्षी प्रबंध-काव्य है। भारतीय साहित्य के अध्येताओं के लिए 'उत्तर रामायण' की दो घटनाओं - सीता वनवास तथा शंबूक वध का वनवासी राम के आचरण और सोच के साथ संगति बिठा पाना कठिन रहा है। वनवासी राम ने अहल्या का उद्धार किया था। राम के जीवन का यह कार्य इसलिए अत्यधिक महत्वपूर्ण है कि यह उनके उदार और उदात्त नैतिक दृष्टिकोण का परिचायक है। ऐसे में यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि राम ने सीता का त्याग क्यों किया? और खास तौर से तब जब वे एक बार उनकी अग्नि-परीक्षा ले चुके थे। यही प्रश्न राम के दूसरे कार्य-उनके द्वारा किए गए शंबूक वध को लेकर उठाया जाता है। उनका यह कार्य निषादराज गुह के साथ प्रकट किए उनके मैत्रीपूर्ण भाव के साथ संगत नहीं प्रतीत होता। जिन रचनाकारों को राम के इन दोनों रूपों के बीच संगति बिठाने में कठिनाई प्रतीत हुई उन्होंने बाद की घटनाओं को छोड़ दिया। स्वयं गोस्वामी तुलसीदास ने यही किया। अभी हाल में प्रकाशित भगवान सिंह के उपन्यास 'अपने अपने राम' में इस घटना को - या कहें कि समग्र राम-कथा को एक सार्थक नए दृष्टिकोण से व्याख्यायित किया गया है। 'अपने अपने राम' में कैकेयी का हृदय-परिवर्तन नहीं होता। यहाँ सीता के चरित्र को लेकर फैलाया गया प्रवाद

राम के विरुद्ध कैकेयी के राजनैतिक षड्यंत्र का एक हिस्सा है। किशोर काबरा ने भी 'उत्तर रामायण' में अयोध्या के षड्यंत्रकारी तंत्र की बात की है। उत्तर रामायण के लक्ष्मण सीते से कहते हैं :

**बड़ा परतंत्र हूँ भाभी, किसी का मंत्र हूँ भाभी,**

**अयोध्या के प्रदूषित तंत्र का षड्यंत्र हूँ भाभी।**[६१]

'उत्तर रामायण' में किशोर काबरा की मूल चिन्ता राम के प्रत्येक आचरण का औचित्य स्थापित करना है। उनका दृष्टिकोण आस्थावादी है। उनका प्रयत्न रहा है कि राम के व्यक्तित्व पर किसी प्रकार की खरोंच न आने पाए। इसके लिए उन्होंने सीता की अन्तर्निहित क्षमाशीलता, भीषण यातनाओं को सहकर भी अपना सन्तुलन बनाए रखने की उनकी असाधारण क्षमता को राम के बचाव के लिए एक कवच के रूप में इस्तेमाल किया है। ग्रंथ की भूमिका में उन्होंने इस बात का संकेत भी दिया है कि वे राम के कार्य को लेकर फैले लोकापवाद से राम के आचरण का मूल्यांकन नहीं करेंगे। इसके लिए वे राम के प्रति सीता के मनोभावों को प्रमाण मानेंगे। वे लिखते हैं : 'दर्शक या परिवेश क्या समझ रहा है, किसी घटना के सम्बन्ध में – यह महत्वपूर्ण नहीं है, महत्वपूर्ण यह है कि प्रभावित पात्र क्या समझता है? उसकी क्या प्रतिक्रिया है किसी घटना के संदर्भ में? लोकापवाद प्रसंग में राम स्वयं सीता के विषय में क्या सोचते हैं यह मूल्यांकन है; सीता–निष्कासन प्रसंग में सीता स्वयं राम के विषय में क्या सोचती है, यह मूल्यांकन है।

साहित्य की विशेषता ही यह है कि उसमें एक ही घटना के बारे में अनेक पात्रों के दृष्टिकोण से विचार किया जाता है। यही पद्धति है वस्तु की संश्लिष्टता और उसके बहु आयामी रूप के साक्षात्कार की। सीता के दृष्टिकोण से भिन्न दृष्टिकोण वाल्मीकि का है। वे कहते हैं, हालाँकि वे 'किन्तु' 'अपितु' लगाकर ही अपनी बात कहते हैं लेकिन जो कुछ

कहते हैं, वह एकदम है असंदिग्ध और पूरी तरह से स्पष्ट। वाल्मीकि की युक्ति निम्न प्रकार से है :

**इस मनुज की देह में**

**हे राम, तुमने काम सब उत्तम किए**

**सम्पूर्ण भी, अतिरिक्त भी।**

**बस एक ही अति रिक्त है**

**मति रिक्त है निर्णय तुम्हारा।**

**इस निराश्रित निरपराधी जानकी का त्याग करने से**

**तुम्हारा कौन सा शुभ कार्य पूरा हो गया है?**

**राम बोलो !**[६२]

लक्ष्मण की प्रतिक्रिया भी कुछ-कुछ इसी प्रकार की है। वे सवाल उठाते हैं :

**अरे, इससे बढ़ेगी राम की क्या कीर्ति हे भाभी,**

**युगों तक भोगना है अब उन्हें अपकीर्ति हे भाभी।**

वाल्मीकि को लगता है कि राम ने सीता के साथ घोर अन्याय किया है इसीलिए वे सावधान करते हुए कहते हैं :

**तब तक जाग्रत रहना बेटी, जब तक न्याय नहीं मिल जाता !**

लेकिन सीता को जो मिला, वह न्याय कम, न्याय की विडम्बना ही अधिक है। कवि ने इस विडम्बना को पहचनाना होता तो 'उत्तर रामायण' का रूप कुछ दूसरा ही होता। लेकिन पुराण-कथा की विशेषता ही यह होती है कि हर कवि उसकी नई व्याख्या

करता है, लेकिन फिर भी उसमें बहुत कुछ अव्याख्यायित रह जाता है भविष्य के किसी अन्य कवि की चेतना को उद्‌बुद्ध करने के लिए।

'परिताप के पाँच क्षण' भी उन्होंने महाभारत के एक प्रसग–भीष्म पितामह की मृत्यु पूर्व की मनःस्थिति के विश्लेषण के द्वारा उनके आदर्शों की मानवीय अर्थवत्ता के सामने प्रश्न खड़ा किया है। हालाँकि यह प्रश्न अम्बा के द्वारा उठाया गया है लेकिन यह अम्बा मूलतः भीष्म की ही चेतना का एक अंग है। अपनी अर्द्धमूर्च्छना की स्थिति में उन्हें अम्बा का उपस्थिति का अहसास होता है। उसके बेधक प्रश्नों की नोंक उनके तन–मन को उन्मथित किए देती है। इस रूप में यह भीष्म का अपना स्वयं का आत्मालोचन है। उनकी चेतना में उभरनेवाली अम्बा का आक्षेप है :

**औरतें उपहार में देना**

**तुम्हारी दमित कुंठा का**

**उजागर पक्ष है।**

**भोग सकते खुत नहीं**

**हाँ,**

**भोग के साधन**

**जरूरतमंद के अंतःपुरों में भेजना**

**शायद तुम्हारा लक्ष्य है।**

**तुमने**

**वृद्ध जर्जर–से पिता की वासना के कुंड में**

उफ्,

मत्स्यगंधा के रुधिर का हवन कर डाल।

तुमने अंबिका, अंबालिका के बाल स्वप्नों का

अरे, निःसत्व भाई की

विकल पुत्रेषणा की वेदिका पर

हनन कर डाला।[६३]

मूल्यगत संक्रमण के इस युग में कवि मूल्यों का निषेध नहीं करता उसका आग्रह केवल इतना ही है कि प्रत्येक मूल्य को मानवीय अर्थवत्ता के स्तर पर अपनी वैधता प्रमाणित करनी होगी। लेकिन जब कवि भीष्म के उपचेतन मन काफ्रायडियन मनोविश्लेषण करने लगता है तो शर-शय्या पर पड़े भीष्म अपने-आपको धिक्कारते हैं :

छिः !

अचेतन की गलित गर्हित गली में

इस तरह क्यों भटकता है मन?

यह नहीं कि कवि भीष्म के उपचेतन मन का विश्लेषण नहीं कर सकता है, या उसे ऐसा करना नहीं चाहिए। कवि के लिए नई संभावनाओं का अन्वेषण करना-सत्य के अप्रिय और असुविधाकारक रूप को भी उद्घाटित करना वर्जित नहीं है लेकिन यहाँ वह उद्घाटन रचना की केन्द्रीय चिन्ता के साथ सुसंगत नहीं दिखाई देता।

सन् १९८२ में प्रकाशित 'धनुषभंग' में सीता स्वयंवर की पौराणिक कथा के माध्यम से कवि ने लोकजीवन और लोक-संस्कृति के प्रति अपने गहरे लगाव की व्यंजना की है। एक पुराण कथा के मूल स्वरूप को क्षति पहुँचाए बिना कवि ने सामान्य जनसमाज

के प्रति उमड़नेवाले अपने हृदय के गहरे अनुराग की व्यंजना कर दी है। कथानक के केन्द्र में है वशिष्ठ और निमि का संघर्ष। अपने-अपने ढंग की अमरता दोनों को मिली है। - वशिष्ठ को भी और निमि को भी, लेकिन निमि की अमरता की सार्थकता इस बात मे है कि वह पृथ्वीलोक के मनुष्य की पलकों पर जिएगा। उसका उत्थान पतन मनुष्य की पलकों के साथ जुड़ गया। निमि कहता है कि :

**मैं मानव की पलकों पर अब हरदम वास करूँगा**

**उनके साथ जिऊँगा हरदम उनके साथ मरूँगा।**

**जन्म-मृत्यु का सारा चिंतन मेरा दास रहेगा,**

**निमिष रूप में महाकाल के सिर पर वास रहेगा।**

**मैं युग युग तक कृषकों के जीवन से जुड़ा रहूँगा,**

**पल-पल की कीमत बनकर पलकों पर जुड़ा रहूँगा।**[६४]

जनक द्वारा हल चलाए जाने पर जानकी का जन्म और राम द्वारा धनुष तोड़े जाने पर राम और जानकी के परिणय में कवि ने एक प्रतीकार्थ भी खोज लिया है :

**हल उठा तभी तो धनुष टूट पाया बेटी !**

अन्यत्र निमि इस धनुष के महत्व की उद्घोषणा करते हुए कहते हैं :

**विश्वकर्ता ने गढ़ा ऐसा अनोखा दिव्य धनु**

**दुर्दान्त और अकल्पनीय विशाल धनु**

**जिसमें छिपा था**

**दलित, पीड़ित शौर्य-शून्य-कदर्य-भय से ग्रस्त**

जन का

सम्मिलित आह्वान !

कवि ने गॉव के रोज–ब–रोज के जीवन के बड़े ही मोहक चित्रों में अपनी संवेदना के हलके गहरे रंग भरे हैं। कृषि–जीवन के प्रति यह गहरा अनुराग जैसे आज की जड़ और यांत्रिक सभ्यता के विरुद्ध प्रकृति की नैसर्गिक अन्तर्लय के साथ जुड़ने का रचनात्मक उपक्रम है।

किशोर काबरा ने अपने प्रबंध–काव्य में जिन मिथ–कथाओं की नई व्याख्या की है उनमें से एक का संबंध भीष्म (परिताप के पाँच क्षण) के जीवन से है और दूसरी के केन्द्र में आचार्य द्रोण (नरो वा कुंजरो वा) का जीवन है विरोधाभास यह है कि पहली मिथ–कथा के अतिशय नैतिक आग्रहवाले भीष्म की प्रतिज्ञाओं को कवि ने उनके व्यक्तित्व के आंतरिक विघटन का कारण माना है। इसके विपरीत गुरु द्रोण को कवि ने मात्र इसलिए अपनी सहानुभूति का अधिकारी नहीं माना कि वे भौतिक अभावों से विचलित होकर उस मानव–विरोध व्यवस्था के साथ हो लिए जिसके प्रभावशाली विरोध की उनसे अपेक्षा थी। निश्चित ही जिस अर्धसत्य का सहारा लेकर द्रोण राज्याश्रय प्राप्त कहते हैं – जीवन की सुख–सुविधाएँ जुटाते हैं, वह भर्त्सना के योग्य है लेकिन इससे युधिष्ठिर का अपराध कम नहीं हो जाता।

'जलते पनघट : बुझते मरघट', 'सारथी मेरे रथ को लौटा ले' तथा 'टूटा हुआ शहर' में कवि की संवेदना एक दूसरे धरातल पर संचरण करती है। आज की औद्योगिक और मशीनी सभ्यता ने बड़े नगरों को जन्म दिया है, लेकिन विडम्बना यह है कि बड़े शहरों में रहनेवाला मनुष्य छोटा होता गया है, उसका व्यक्तित्व कुंठित होता गया। किशोर

काबरा के लिए नगर–बोध इसलिए और भी अधिक पीड़ादायक है कि वे अभी तक गॉव के जीवन की आह्लादक स्मृतियों को अपने हृदय में सजोए हुए है :

देखो तो शहरों को

धुआँ कारखानों से बल खाता निकल रहा,

वैभव को भ्राता–सा बाहों में

बेकारी कुचल रहा पाँवों में।

और उधर गाँवों में

सूखे–से ओठों की क्यारी में दौड़ा रही

चुम्बन सी नहरें ये,

खुशियों की लहरें ये,

मानो इन खेतों के सीने से

ममता की मारी महतारी जा लिपटी हो।[६५]

गांव के प्रति यह रुझान भले ही कुछ–कुछ नोस्टोल्जिक हो, लेकिन कवि ने शहर को प्रायः टूटन, विखराव और पीड़ा के अन्तहीन विस्तार के रूप में ही देखा है :

(१) धुँधली आँख को मैं दे रहा हूँ एक नकली आँख,

भूखी जीभ को बत्तीस नकली दाँत,

सूखे खेत बालों को खिजाबी रंग,

लटकते–से झूलते–से सुस्त गालों को

दवा की बोतलों का लड़खड़ाता संग।

(२) दिमाग की सभी गलियों में घूम आया

आनेवाला लंगड़ा कल

आज के अंधे कंधे पर सवार।

(३) अलमारी जैसे होटल की कुर्सी पर

दही की तरह जमा हुआ मैं।

(४) और मैंने ईसा को

फिर से

सूली पर लटका दिया,

ड्राइंगरूम फिर से चमक उठा।

(५) मैं

टूटे शहर को जोड़ने वाले पुल की तरह

बाहें फैलाए लेटा हूँ।

नीचे सूखी नदी है

जिसमें न गति है, न बहाव है,

बस ठहराव–ही–ठहराव है।

नए कवियों ने शहर को एक संकट के रूप में देखा था इस स्तर पर किशोर काबरा नए कवियों की संवेदना और अनुभव के एकदम समीप दिखाई देते हैं, लेकिन अपनी इस संवेदना को वे सर्वथा नये बिम्बों और प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त करने का उपक्रम करते हैं। कुछ उदाहरणों से हमारी बात स्पष्ट हो जाएगी। वे लिखते हैं :

HANSA MEHTA LIBRARY
The M. S. University of Baroda


(१) ये डालियाँ हैं या किसी विधवा की सूनी कलाइयाँ हैं ?

अस्तित्वहीन प्रतिबद्धता का बोध

काँच की आखरी चूड़ी का

एक पैना टुकड़ा बनकर

गड़ रहा है मेरे वक्ष पर

बंद पड़ी शहनाइयों के

शब्दहीन निःश्वास–सा।

मेरी कलम की बांसुरी

आज बड़े दिनों के बाद

मौसम की धड़कन पर रखी है। – किशोर काबरा

(२) अरे तुम तो जीवन की रोती गागर थामे

पनघट पर रोते भी हो,

अरे,

तुम तो मौत की ठण्डी चादर ओढ़े

मरघट में सोते भी हो। – किशोर काबरा

वस्तुतः किशोर काबरा की रचनाशीलता का सर्वोत्कृष्ट रूप उनकी प्रगीतरचनाओं में खास तौर से उन रचनाओं में जिनमें कवि ने अपने हृदय के कोमल मधुर भावों की अबाध व्यंजना की है – प्रकट हुआ है। इस प्रकार की रचनाओं में भावों की ऐसी उद्दाम आवेगशीलता है कि जो सामने आनेवाले अवरोधों को एक ओर हटाती हुई अपने–आप में

समेटती हुई आगे बढ़ जाती है। प्रगीत–धर्मिता उनके लिए इतनी सहज है कि उनके प्रबंध काव्यों के बीच आनेवाले प्रगीतात्मक अंश अपनी एक अलग पहचान बनाते हैं।[६६]

किशोर काबरा मूलरूप से राजस्थान की मरुभूमि में खिले ऐसे अमलताश के वृक्ष हैं जिनकी डालों पर प्रफुल्लित पुष्पगुच्छों ने गुजरात की सम्पूर्ण साहित्य धरा को सुगंधमय कर दिया है।

**विष्णु विराट :**

इसी वरिष्ठ साहित्य सृष्टाओं की श्रृंखला में एक प्रतिष्ठित नाम है विष्णु विराट। कविता, गीत, नवगीत, नई कविता, ब्रजभाषा छन्द, मुक्तक, हाइकू, कहानियाँ, उपन्यास, ललित निबन्ध, महाकाव्य, खण्ड काव्य, शोध समीक्षा की तमाम विधाओं में आपने साधिकार लिखा है।

इनकी प्रातिभ रचनाशीलता इसी तथ्य से आकर्षित करती है कि एक ओर तो आपने ठेढ पुरातन घनाक्षरी और सवैया छन्दों में ब्रजभाषा काव्य सृजन किया है जिसमें भक्तिभावना की परस्परित तथा रूढ सोच ही उजागर हुई है तो दूसरी ओर इनके नवगीत राष्ट्रव्यापी ख्याति से संलग्न रहे हैं।

ब्रजभाषा में 'मोहिबीन के तारन में कसिलैं; 'विराट सतसई' छन्दराग तथा 'फैली पंलाश के कानन लौं' काव्य संकलन लोक प्रसिद्ध हुए हैं तो दूसरी ओर नवगीत के अनेक संग्रह राष्ट्रव्यापी पहचान बनाने में सक्षम हुए हैं।

विष्णु विराट के ब्रजभाषा सृजन को समीक्षित करते हुए वरिष्ठ साहित्यकार भगवानदास जैन कहते है – डॉ. विष्णु विराट का जितना समर्थ प्रदान ब्रजभाषा काव्य को रहा है उतना ही खड़ी बोली काव्य में भी उनका आधिकारिक योगदान है। उनकी

ब्रजभाषा कृतियों में **''फैली पलाश के कानन लौं''** (सवैया छन्द संग्रह) तथा **''विराट सतसई''** (सात सौ दोहों का संग्रह) प्रकाशित है अन्य रचनाएँ **ब्रजगंधा** (ब्रजभाषा के स्फुट छन्द), ब्रज लोक गीत गरिमा (ब्रजभाषा के गीतों का संग्रह), ब्रज नवगीत (नवगीतों का संग्रह) आदि प्रकाशन पथ पर हैं।[६७]

इनकी हिन्दी खड़ी बोली के काव्य ग्रंथों में प्रबंध रचनाएँ **'सीता स्वप्न' 'एक रण वैचारिकी है शेष' 'रवि–रावण संवाद' 'तमसा के तट पर' 'पितृऋण' 'निवर्सना' 'संकल्प'** महाकाव्य, **'तारक संग्राम', 'कहो प्रिया'** प्रकाशित हैं। इनके अतिरिक्त इनकी लम्बी और ख्यात रचनाओं में गीत–नवगीत संग्रह **हाथ से छूटे कबूतर, धूम्रवन से लौट आईं लाल परियाँ** तथा **समय साक्ष्य है** प्रकाशित हैं।

डॉ. विष्णु विराट में जो काव्य प्रतिभा का वैशिष्ट्य है, वह यह कि आपने जिस अधिकार से ब्रजभाषा काव्य के सृजन में अपनी मौलिक और सक्षम प्रतिभा का प्रदर्शन किया है इसी अधिकार के साथ आपने हिन्दी खड़ी बोली में रचनाएँ की हैं।

**कवि का ब्रजकाव्य :**

डॉ. विराट के ब्रजकाव्य में दो पक्ष विशेष रूप से रेखांकित किये जा सकते हैं, एक तो सामयिक बोध से संलग्नता का और दूसरा परम्परित रूढ़ कथ्यों को छन्दानुबंधन में निबंधित करने का। विषयगत ये दोनों ही पक्ष कवि के कृतित्व में स्पष्टतः तथा सक्षमता के साथ काव्यांकित हुए हैं, जहाँ कवि ने ब्रजकाव्य के आलोक को प्रकाशित किया है। परम्परित ब्रजकविता के ये दो उदाहरण ध्यातव्य हैं :

**देखत ही मेंहदी–मेंहदी भई,**

**नैनन नेह रचाय गई कछु।**

कानन–लौं अँखियांन की बानगी,

मोहन के मन भाय गई कछु।

छैगी–छोर छली ने छुई कछु,

कान की लोर ललाय गई कछु।

लौटि कैं आई कछू–कछू मायकें,

स्याम के गाम लुटाय गई कछु।।[६८]

इसी प्रकार वियोगिनी नायिका और सावन का छन्द देखिए :

बीतत द्यौस लकीर लगावत,

चीत दिए सब भीतना लेखि कैं।

सावन रोके रुकैं नहिं अंगनि,

थाक गई पिय को पथ पेखि कैं।

ये उड़ि जान चहैं हैं पयोधर,

आग लगी छतियांन कौं छेकि कैं।

मारत ईंट अटान चढ़ी,

दृग झारत स्याम–घटान कौं देखि कैं।।[६९]

ब्रजकाव्य रचना के संदर्भ में कवि ने जहाँ अपनी मौलिक उद्भावनाओं को व्यक्त किया हैं, वहाँ उसके कथ्याभिप्राय में एक नई जीवन्तता का परिचय मिला है। जैसे कवि ने लीक से हट कह गोकुल गाँव की लड़कियों को कृष्ण की प्रेयसियां न कह कर उन्हें

कृष्ण की बहन के रूप में काव्यांकित किया है और ग्राम परिवेश की सम्पूर्ण सहज संस्कृति को भी साथ-साथ साकार कर दिया है :

नवला बनि कैं अबला बनि हैं,

घर छोड़ि कैं मोड़ मुड़ैंगीं कहूँ।

हम साँच ही गाय की बाछी भई,

हम जानैं अजानैं जुड़ैंगीं कहूँ।

हम पीहर के बन सौं उजड़ीं,

फिर नीड़ नयौं सौ बुनैंगी कहूँ।

हम बाबुल के घर की चिरियाँ,

चुँगि चाँमरि चारि उड़ैंगी कहूँ।

दुखियारी गरीबनी गूँजरी हैं,

हम ऊजरी धूजरी धाम की हैं।

हम नन्द के लाल की हैं बहिना,

हम छोहरी तौ ब्रजधाम की हैं।।[७०]

कवि ने जहाँ ब्रजकाव्य के परम्परित स्वरूप को सहेज कर सामने रखा है वहीं उसका कविकर्म आधुनिक बोध से भी उत्प्रेरित हुआ है जैसे :

उमर भर अमावस की रात हमैं जीनी है,

चार दिन की चाँदनी में चाहैं जो कर जाउ।

भनत ''विराट'' ठाठ बाट कौं बनाएँ रखौ,

पीतर पै सौने कौ पानी बनि चढ़ जाउ।

पंख लग्यौ प्रश्न कौ पहाड़ है हमारो देस,

आप याहि लैकें काहू सिन्धु में उतर जाउ।

आप बादशाह जू के बे–लगाम घोड़ा हौ,

हम तौ है जंगल की घास हमैं चर जाउ।।[७१]

कवि सामयिक चेतना को अपने काव्य में व्यक्त करके अपने कवि कर्तव्य का निर्वाह मात्र ही नहीं करता किन्तु श्रोतावर्ग को एक प्रबुद्ध मासिकता से भी जोड़ता है। उसके ये काव्यकथन आत्मानुभूति के यथार्थ पर आधारित हैं जब वह कहता है :

मन को सुभाव सदा माया सौं मलीन होत,

लालच के लगाव की लगाम बड़ी खोटी है।

''विष्णु'' कवि धारियै न मुकुट हमारे माथ,

चलिबे कौं संग यार हीरा है न मोती है।

जरी के दुसाला आला मखमल रुचैंगे नहीं,

चाहियै हमैं तो तीन हाथ की लंगोटी है।

छोटी आमदैनी की निसैनी हिचकोले खात,

साग है चना कौ संग बाजरे की रोटी है।[७२]

कवि का ब्रजभाषा काव्य प्रदान एक अहम् भूमिका का निर्वाह करता है क्योंकि वर्तमान काल को ब्रजभाषा काव्य का क्षरणकाल तो कहा ही जा सकता है, ऐसे समय में विष्णु विराट का ब्रजकाव्य अपनी पूर्ण सम्पन्नता और गरिमा के साथ समय का

प्रतिनिधित्व–सा करता प्रतीत होता है। मैं तो कवि विराट को 'ब्रज–भाषा का वर्तमान श्रेष्ठतम हस्ताक्षर' के रूप में स्वीकारता हूँ।

**'फैली पलाश के कानन लौं'** – विष्णु विराट की यह ब्रजभाषा की श्रेष्ठतम कृति है। सवैया छन्दों में लिखी इस कृति में लगभग डेढ़ सौ सवैया छन्द हैं। हिन्दी के वरिष्ठ साहित्यकारों ने इस कृति की भूरि–भूरि सराहना की है, जिनमें सर्वश्री श्रीनारायणजी चतुर्वेदी, विद्यानिवास मिश्र, नामवर सिंह प्रभृति विद्वानों का उल्लेख किया जा सकता है। समयाभाव और स्थानाभाव के कारण इसकी विशद चर्चा यहाँ उचित नहीं है। इसके दो उदाहरण द्रष्टव्य हैं :

**मैं बन जाऊँगी छाँव कदंब की,**
**तू मोहि कान्हर काँध चढ़ाय लै।**
**मैं तोहि काजर जानि कैं आँजि लौं,**
**तू अधरान पै मोहि रचाय लै।**
**मैं तोहि आँचर में कसि लौं,**
**मोहि बाँधि कहूँ पटका में पचाय लै।**
**मैं कटि–किंकिनी तोहि बनाय लौं,**
**तू मोहि बाँसुरी जानि बजाय लै।।**[७३]

इसी प्रकार एक अन्य छन्द ध्यातव्य है : (चीरहरणलीला का है)

**बाहिर आइबे के बस ना,**
**बसना हमैं देहु जू कान्हर कारे।**

पानि बहैंगौ कलिन्दजा–पानि में,

पानि में पानि नहीं उठवा रे।

एँठत पैंठत प्रानन लौं,

चढ़ि बैठि कदंब पै बाँसुरी बारे।

देह के चीर चुराइबे में,

हिय चीर चुरावत चित्त हमारे।।[७४]

सूलन सेज पै फूल गुलाब के :

कवि विष्णु विराट का घनाक्षरी छन्दों का संकलन है जिसमें परंपरित तथा आधुनिक बोध से संलग्न लगभग दो सौ कविताएँ संग्रहीत हैं। कुछेक उदाहरण ध्यातव्य हैं:

अजब नमी है, मौसम में कमी है कछू,

जमी जात बस्ती में बर्फ–सी लहर है।

सुकवि ''विराट'' जुरे बीन के बजैया जबै,

नस–नस में नाँच रह्यौ साँप कौ जहर है।।

एक नींम धुंध, एक कसकै कसैलौ धुँआँ,

तरसत हैं प्रान, कैसौ बरसत कहर है।

गहरौ है घाव, फेर पहरौ उपचारन पै,

गर्द–गर्द लोग, बुझौ–बुझौ–सौ शहर है।।

– डॉ. विराट

इसी तरह एक अन्य छन्द ध्यातव्य है :

पीपर के पेड़ न पात कहूँ पेखियत,

कौन फल फेर, यह घेर रह्यौ धरती कौं।

सूख कैं भयौ है ठूँठ, कौन काज ठाड़ौ यह,

काटि–काटि छाँटि–छाँटि, फूँकहु अनरथी कौं।

पंछिन पनाह नहीं, पथिकन कौं छाँव नही,

दया लागि छोड़िवौ न भलु असमर्थिन कौं।

दूर करौ बेगि पापी पैठौ जो प्रदूषन ताहि,

नाम मेंटि देहु दृग दीसत अखरती कौं।। – डॉ. विराट

कवि ने ब्रजभाषा में छायावादी काव्य के मानदण्डों को सामने रखते हुए जो गीत लिखे हैं वे ब्रजभाषा में विरल ही हैं। गीत के आमुख ध्यातव्य है :

* सूरज की धूप पी रहे सियार,

  खेतन में बाँस उगाऔ भैया।

* ठहर गयौ गाँव कौ धूँआं जैसै गाँव मैं,

  जाड़ेन की साँझ भई जिन्दगी।।

* राजभवन की बिजली गुल भई,

  राजा की पोल खुल गई।। – डॉ. विराट

ब्रजगंधा में घनाक्षरी छन्दों को ही समविष्ट किया गया है जबकि ब्रजगीतांजलि मे कवि के ब्रजभाषा के नवगीत सम्पादित हैं।

विराट सतसई :

आधुनिक बोध से संयुक्त ब्रजभाषा दोहा छन्द में रचित सात सौ दोहों का यह विशिष्ट संकलन है। इसमें सभी दोहे वर्तमान मानवीय संवेदनाओं तथा युग की त्रासद परिस्थितियों का आकलन करते हैं। कुछेक दोहे ही द्रष्टव्य हैं :

**फिर मन कुत्ता बावरौ, फिर मन बब्बर शेर।**

**आखिर खरगोसी–मना, कब लौं सहै अँधेर।।**

**हरित पात में दुरि रहे, रकत रंग सौगात।**

**हम बँगला की हद्द पै, हैं मेंहदी के पात।।**[७५]

आदि

विष्णु विराट का ब्रजकाव्य बहुत ही समृद्ध तथा गंभीर है। आपके ब्रजकाव्य को सम्मानित करते हुए उत्तर प्रदेश सरकार ने आपको हिन्दी–संस्थान का **''श्रीधर पाठक''** पुरस्कार प्रदान किया है। ब्रजभाषा काव्य के लिए यह देश का सर्वोच्च सम्मान है।[७६]

विष्णु विराट ने ब्रजभाषा में केवल पादपूर्ति ही नही की है। इन्होंने ब्रजकाव्य रचना के परिप्रेक्ष्य में अपनी विशिष्ट पहचान भी बनाई है। आचार्य त्रिलोकीनाथ ब्रजवाल लिखते हैं कि – 'विष्णु विराट की विशेषता यह थी कि ये ब्रजभाषा काव्यपाठ हेतु भी उतने ही लोकप्रिय और वरिष्ठ थे, जितने खड़ी बोली में, एक बार हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन मथुरा में हुआ था चम्पा अग्रवाल इन्टर कोलेज में कवि सम्मेलन स्मरण है जहाँ इन्होंने ग्रीस्म के दो छन्द पढ़े, वे इस प्रकार हैं :

**लखि जीवन दीनदसा बिगरी, फिर देखिकैं आँच चहूँ जरती।**

**सिरदार सिरोमनि सावन नें, नई बादर फौज करी भरती।**

फिर तोपन दागि दिसानन तें, घुमड़े नभ घेरि लई धरती।

बरसैं लगीं बूँद बूँदकन–सी, निकसें लगी ग्रीष्म की अरथी।। – डॉ. विराट

दूसरी सवैया छन्द था –

गरजैं तरजैं उमड़ैं घुमड़ैं, घिरि घोर घटान घली चली आवैं।

दल ग्रीषम के दलकैं मलकैं, ललकैं लड़िवे कौं बली चली आवैं।

बिजुरी तरबार घुँमावत हैं, दुख दारूनदुन्व्द दली चली आवैं।

बढ़ि पौन के घोड़न पै चढ़ि कैं, घन फौज पै फौज चली चली आवैं।।

– डॉ. विराट

चारौ और से वाहवाही की झड़ी लग गई। श्री नारायणजी चतुर्वेदी ने एक और छन्द सुनाने का आदेश दिया और इन्होंने इसी विषय पर छन्द पढ़ा –

फरर फरर पौन फहरत डोलै नभ, सरर सरर द्वार तोड़त तड़ाके सौं।

घरर घरर झूमैं बादर वितुण्डन–से, तरर तरर तरू टूटत तड़ाके–सौं।

घिरत घटान घोर अड़ड़ अड़ड़ धूँम, धड़ड़ धड़ड़ कान फोड़त धड़ाके–सौं।

कड़ड़ कड़ड़ करै दामिनी कड़ड़ड़ड़, झरर झरर मेह बरसत झड़ाके सौं।।

– डॉ. विराट

कहना नहीं होगा, सभी वरिष्ठ साहित्कारों ने इन छन्दों की भूरि–भूरि प्रशंसा की। अपने अध्यक्षीय भाषण में श्री नारायणजी ने इसका उल्लेख करते हुए कहा था कि विष्णु विराट द्वारा छन्दपाठ इस अधिवेशन की उपलब्धि रही है, मैं विश्वास के साथ कह सकता हूँ कि विष्णु विराट ब्रजभाषा के एक श्रेष्ठ कवि के रूप मे उभरेंगे।

एक और प्रसंग बृन्दावन का है, बिहारीजी मंदिर के सामने लाल जी महाराज का मंदिर है, वहाँ संभवतः सन् १९६७ में काव्य गोष्ठी हुई थी, वृन्दावन के राधाकृष्णजी महाराज अध्यक्ष थे, वृन्दावन के और भी कई स्थापित कवि थे, मथुरा से राजेश दीक्षित तथा महेन्द्र चतुर्वेदी थे। राजेश दीक्षित भी ब्रजभाषा तथा खड़ी बोली कविता के सिद्ध हस्त सर्जक थे, वहाँ विष्णु विराट ने यह छन्द पढ़ा था, जिसे गोष्ठी के आग्रह से तीन बार पढ़ना पड़ा :

वह नंदलाल है, गुलला गुलदस्ता है,
सरस सुगंध–भर झौंका है समीर का।
गैयन चरैया है कन्हैया छली छल बाला,
गोरस चखैया है, चुरैया वह चीर का।
नंज जू का छौना जादू टौना, जो करै है रोज
रास का रचैया है जमुना के तीर का,
जोर जोर तोरत हमीं से दृग दगाबाज
चोरटा बड़ा है यह छोरटा अहीर का।।[७७]

यहीं उन्होंने दूसरा छन्द पढ़ा था –

भींज रही मैंहदी, कटीले कजरारे नैन,
भींज रही दुलहिन दुलार भरे गेह में।
भींज रही चूँनरी सुलगि अँगना के अंग,
भींज रही कंचुकी कसाव भीर मेह में।

भींज रहे अधर, कपोल, चख चाव भरे,

भींज रहे अचक उरोज भरे देह में।

भींज रह्यौ अंबर, अकाश में घटान बीच,

भींज रही प्यारी बनवारी के सनेह में।।[७८]

मुझे इन छन्दों की एक दो पंक्ति ही याद थी बाद में मैंने **'पलाश के कानन लौं'**, काव्य संग्रह से ढूँढ़ के ये छन्द निकाले हैं।

उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान लखनऊ ने ब्रजभाषा के सर्वोपरि सम्मान **'श्रीधर पाठक पुरस्कार'** से इन्हें समादृत किया। कोटा से भारतेन्दु पुरस्कार प्राप्त हुआ, भरतपुर में राजस्थान में ब्रजभाषा अकादमी ने इनका सम्मान किया। नाथद्वारा में ब्रजकवि के रूप में शिखर सम्मान से इन्हें प्रतिष्ठित किया गया। गजेन्द्रनाथ स्मृति सम्मान से इन्हें लखनऊ में सम्मानित किया गया। ब्रज साहित्य मण्डल द्वारा इन्हें 'सुकवि शिरोमणि' से सम्मानित किया गया।

एक बार स्मरण आ रहा है, हिन्दी के श्रेष्ठ कवि भारत भूषण अग्रवाल मथुरा आए थे, श्री राधेश्याम द्विवेदी जोशी बावा की हवेली में काव्य संध्या थी, उस गोष्ठी में विष्णु विराट ने जो दो छन्द पढ़े थे, भारत भूषण जी उन्हें लिखवाकर ले गए और भरि-भूरि प्रशंसा भी की। वे छन्द थे –

पपिहन के सोर खाए, घोर घनघोर खाए,

कोर खाए नैननि, निचोरि बड़े भाउ सों।

पंछिन के सोर खाए, छोर दुपहरिया के,

ढोर खाए प्यासे-से उदासे खासे पाउ सौं।

चोर बनि चोरै चित जोरै दृग लाल लाल,

डेरा डारि दीने, डरै रंक सौं न राउ सौं,

जोर खाए देह के, मरोर मन डारे तोर,

मोर खाए मारि कैं, चकोर खाए चाउ सौं।

दूसरा छन्द था –

देखि कैं निराट घाट आई है अन्हावन कौं

पटहिं उतारि कै संकोचि चहुँ हेरी है।

सुकविं विराट ज्यौं जवाहर की हाट खुली,

खुले केस जैसैं घटा घिरत घनेरी है।

भौरन की भीर कौं भजाय कर कंजन तें

चन्दन शरीर तें फनिन्दन निबेरी है।

न्हाय निकसैं ही जमुना तें चारू चंदमुखी

चतुर चकोर चहुँ ओरनि तें घेरी है।।

विष्णु विराट के ब्रजकाव्य की लोक प्रियता ब्रजभूमि तक ही नहीं हैं, कलकत्ता के मारवाड़ी समाज में, बम्बई के ब्रजवासी समाज में, राजस्थान की ब्रजभाषा अकादमी में, नाथद्वारा–कांकरोली में, अहमदाबाद, सूरत, भावनागर आदि अहिन्दी भाषी क्षेत्रों तक में इनके ब्रजकाव्य की धूँम है।

साहित्य की सौन्दर्यवादी चेतना से जुड़े तथा काव्य के मानव मूल्यों से संयुक्त उनके कुछ सवैया छन्द द्रष्टव्य है –

सुनि बाँसुरी कान्ह की कान तजी,

एक झूमती आई मतंगिनी–सी।

एक बादर फोरि कैं बीजुरी–सी,

एक चौकड़ी मारि कुरंगिनी–सी।

धरती धरती पै नहीं पग एक,

चली उड़ि आई बिहंगिनी–सी।

एक सारिका–सी, एक खंजन–सी,

एक मोरनी–सी, एक हंसिनी–सी।।

* * *

भोर उषा अधरा अरूणाम–से,

नैन छटा अरूणांचल है गई,

राधिका स्याम कौ रूप विलोकि कैं,

इन्द्रसभा सब बेकल है गई।

काम गरूर की धूर उड़ैं लगी,

और रती मति कायल है गई।

हायल हायल चन्द्रमा है गयौ,

चाँदिनी घायल घायल है गई।।

जमुना पै सितारे भरी चुंनरी कर

जोरि निहोरि चढ़ाऊँगी मैं।

व्रत मंगलवार करौं हौ सदा,

सब देव औ देवी मनाऊँगी मैं।

छल छंदन फंदन में फँसि कैं,

छलिया के छले छलि जाऊँगी मैं।

ब्रज में ब्रजराज पधारैं सखी,

सिगरौ ब्रज न्यौंत जिमाऊँगी मैं।।

कवि विष्णु विराट ब्रजभाषा के आचार्य कवि हैं, छन्द, रस, अलंकार, वक्रोक्ति, भाषा एवं प्रस्तुति की अभिनवता उनमें सर्वत्र विद्यमान है। संस्कृत भाषा पर उनकी अच्छी पकड़ है, यही कारण हैं कि ब्रजभाषा काव्य में प्रयुक्त, शब्द सम्पदा में वैविध्य भी है और चमत्कृति भी सन्निहित है, उनके कुछ विशिष्ट प्रयोग देखिए :

बाहिर आइवे के बस ना

बसना हमें दीजियै कान्हर कारे।

पानि बहैगौ कलिंदा पानि में

पानि में पानि नहीं उठवारे,

* * *

क्यों दुख देत सनेह सहेज कैं

क्यों मन लेत नहीं मनभाए।

चीर चुराइवौ छोड़िकैं देखि लै,

चीर हिये कौं अहीर के जाए....

* * *

सॉवरी है गई सॉवरे सौं लगि

कामरी बारे पै का मरी जात है।

* * *

आस लिए खासे, प्यासे द्यौस दुपहरिया के,

कै से ये तमासे महबूव के रिसाने में।

आए बरी दूर सौं, बुलाए हैं तिहारे काज,

नेहिन निवास दीजै नैन खसखाने में।।

काव्य संग्रह प्रस्तुत में इसी तरह के अभिनव और उत्कृष्ट छन्द भरे पड़े हैं। उनकी पढ़ंत और प्रस्तुति भी परम विशिष्ट है, यह परम्परा अब विनष्ट हो रही है।'[७९]

जितना गम्भीर और वरिष्ठ आपका ब्रजकाव्य सृजन है, उतनी ही श्रेष्ठ आपका गीत सृजन भी है। नवगीत विधा में अपनी विशिष्ट पहचान वाले विष्णु विराट के संदर्भ में वरिष्ठ साहित्यकार कुमार रवीन्द्र लिखते हैं –

शेष सन्नाटा बड़ा बेचैन करता

उग रहा जंगल

भयावह–सा दिलों में

विष्णु विराट के गीतों की विशिष्ट है उनकी बैचेन–करती समृद्ध बिंब संयोजना और सार्थक भाषा– संरचना। किसी भी कवि की भाषा उसकी अंतर्दृष्टि की उपज होती है, यह उन अवचेतन के स्थलों से उपजती है, जहाँ वर्तमान संदर्भों से कवि का मन जूझता है, विचलित होता है, अव्याकुल विचलन की यह भावभूमि एक बेचैनी की सृष्टि करती है, जिससे कविता स्वंतः उपजती है, यह बेचैनी आज की कविता की खास पहचान है, हिन्दी गीतकाव्य में पिछले कुछ समय में जो रागात्मक बदलाव आए हैं, जो अवचेतनात्मक भंगिमाएं प्रस्तुत हुई हैं, उनका स्वरूप इसी बेचैनी से निर्मित हुआ है, विष्णु विराट के गीतों में यह बेचैनी उनके परूष–कठुल बिंबों और भाषा–संरचनाओं में अभिन्यक्त हुई है, यह काव्य–भाषा मृदुल–मधुर सहज रागात्मक संसर्गों की प्रस्तुति के लिए सर्वथा उपयुक्त है इसीलिए विष्णु विराट में सहज हुलास और नाजुक संज्ञानों के गीतों की उपस्थिति विरल ही है, उसके लगभग सभी गीत परेशान करते हैं, यही इस गीतकार की खासियत भी है।

ऊपर अमृत कविता–पंक्तियाँ विष्णु विराट के नए गीत–संग्रह **'हाथ से कबूतर से हैं'** संग्रह के आमुख–गीत की इन पंक्तियों से कवि की इसी विशिष्ट बेचैनी का अभिव्यक्ति हुई है, उसके पूरे पारदर्शी स्वरूप के साथ यह चकित करनेवाली बात नहीं है कि विष्णु विराट के गीतों में व्यंग्य और आखेट से जुड़े बिंबों की आवृत्ति बार–बार हुई है, मनुष्य की आदिम आखेटक प्रवृत्ति अपने अपरिष्कृत एवं उद्दाम स्वरूप में ज्यों की त्यों इन सशक्त बिंबों में प्रस्तुत हुई है, उपर्युक्त आमुख गीत में एक मरणोन्मुख पतनशील सांस्कृति परिवेश का आकलन इसी ढंग से हुआ है[८०] –

**थी जहाँ नूरेजहाँ / मुमताज की रंगीन खुशबू**

**गठरियाँ सूखे गुलाबों की / मिलेंगी इन किलों में**

और

गढ रहे गणराज्य / वैशाली नगर में

बाँध घुँघरू / नगर–बधुएँ नाचती हैं

**हँस रहीं संभ्रात विषकन्या / महल में**

**गाँव भर की जनमपत्री बाँचती हैं।**[८१]

एक ओर प्रतीक रूप में हमारे पूरे खुशबू भरे नाजुक सांस्कृतिक संदर्भों के **'गठरिया सूखे गुलाबों की'** में तबदील हो जाने का बेचैन करता बिंब है, तो दूसरी ओर गढे–जा रहे तथाकथित गणराज्य की विसंगतियाँ नगर–वूध होती अपसंस्कृति और संभ्रात दिखती विषकन्या के गाँव–गाँव तक पसर जाने और वहाँ की भाग्य–नियंता हो जाने के त्रासद बिंबों में शिद्धत से पेश हुई है। इस संग्रह में अन्यत्र भी **'तस्करों के गाँव'** की उससे जुड़े, बदनाम जंगल, शिकारी–से लगते दरोगा और सिपाही, थानेदार नींद और उससे जगने पर उसकी बदमिज़ाजी, अधनंगे गाँव में शहर शहर की धूप बाँटने के लाखों थोथे शुभ्र आश्वासनों के साथ हर जगह फिरते मुकुट कुंडलधारी श्वेतांबर नेता, रोती बया के मुकाबिल पक्षियों में गीध जागने और टिड्डियों के सूर्य–रथ रोकने और चमगादड़ों के उलटी दिशा में उड़ चलने की तफ़सील से खबरें हैं बदहवास रानी और उसके मुसाहिदों के द्वारा देश में आग लगा देने के संदेश भी इन गीतों में मुखर हुए हैं, शांति से संहार करते अहिंसक वेश या क्रूर–कुटिल मुस्कान धारी सैंकड़ों हिंसक भयावह व्याघ्रों के छल–का खुलासा करते ये गीत, सच में, **बड़ा बेचैन** करते हैं, **लहू–लुहान सोनचिरी** को किसने मारा पत्थर के साथ **हम तमाशबीन हुए / देखते रहें कब तक / तीर कसे / खिंच रही कमान** के प्रश्न भी हैं, निम्न पंक्तियों में आज की असंगतियाँ अपनी पूरी भयावहता के साथ चित्रित हुई हैं –

सोनचिड़िया / अब नहीं गाती प्रभाती

यक्षवन में हल न होता प्रश्न कोई

अब न हरसिंगार / केसरिया बिछाते

अब न कोसों दीखता है जश्न कोई

बुदबुदाता पंक ऊपर फूटता है

सैंकड़ों विषकीट अपने पंख धोते[८२]

ऐसे वीभत्स समय में हमारी सांस्कृतिक विरासत की नदी क्या करे –

यह नदी कैसी लुटी–सी / अटपटी–सी

हड़बड़ाती झाग देती, लड़खड़ाती

भागती–गिरती–संभलती, चीखती फिर

राम–जाने क्या अनर्गल बुदबुदाती..... – डॉ. विराट

यह अनर्गल हो जाना ही आज के समय की नियति है ऐसे ही वीभत्स बिंबों का सशक्त गीत है **एक राजा / सैकड़ों चमगादड़ें उड़तीं / थूकती है रात अंधियारा** आदि।

इस सारे नकारात्मक प्रसंगों के अलावा इस संग्रह में एक स्वदर्शी सकारात्मक स्वर भी है, जो कुछ हद तक आश्वस्त करता है, **इन्हें वंदन करो** गीत में पसीने में नहाये समय के सूर्य एवं हर युद्ध जीतकर आए काल से भी बड़े सूरमाओं के साथ आम खेतिहर और मजदूर की भी वंदना है –

छत नहीं सिर पर न तन पर वस्त्र देखो

बन गया यह आदमी एक अस्त्र देखो

शोषण के शिकारी वर्ग एवं व्यक्ति के मारक-संहारक हो जाने का यह चिंतन सटीक क्रांतिकारी है, कहने का आवश्यकता नहीं है, इस सकारात्मक सोच के केन्द्र में ही कवि की सात्विक मनिष्योन्मुखी दृष्टि है, जिसके तहत परंपरा से जुडे किंतु आदर्शोन्मुख चिंतन के नए कालखंड की परिकल्पना की गई है, जब

**हाथ बूढ़े काँपते-से / दीप देहरी पर धरेंगे**

**लेखनी आश्वस्त होगी / शब्द पर पहरे न होंगे**

**एिकर चढ़ श्वेतांबरो के / आचरण काले न होंगे**

**हाथ में पत्थर लिए / बच्चे न राक्षस से डरेंगे**

**हम तुम्हारे साथ तब चर्चा करेंगे** – **डॉ. विराट**

संग्रह में बेटियाँ शीर्षक से एक कविता है, जो अपने राग-तत्व उल्लास, भाव और उर्दू नज्म के तर्ज़ की कहन के कारण अपनी अलग पहचान बनाती है, सुखद है ये नाजुक संसर्ग और इनसे आश्वस्ति होती है कि आस्तिकताएँ अभी मरी नहीं है और उनके माध्यम से सभ्यता के अमानुषिक सर्वशोषक तंत्र को रोका जा सकता है, एक नए सूर्य और एक नई आशावादिता से उदभाषित जीवन की संरचना इस संग्रह की उपलब्धि है।[८३]

जनवादी संचेतना के समर्थक और साम्यवादी सोच के समर्थक वरिष्ठ साहित्यकार प्रो. शिवकुमार मिश्र ने आपकी खण्डकाव्य कृति अजेय कर्ण के विषय में विचार व्यक्त करते हुए कहा है – 'अजेय कर्ण' के संदर्भ में मेरी इस चर्चा का आशय यही है कि विष्णु विराट ने कर्ण के, अंतिम क्षणों के आत्ममंथन में जो कुछ उद्घाटित किया है, वह महाभारत में वर्णित भले न हो, अपनी अंतर्वस्तु में विस्फोटक उग्र और वेधक भले हो, उसका आधार वही कर्ण और उसके जीवन संदर्भ हैं, उसके वे ही क्रिया कलाप और

विचार हैं, उसका वही चरित्र और वे ही मनोभूमियाँ हैं, जो महाभारत में विस्तार से वर्णित हैं, कवि की सर्जनात्मक कल्पना, उसके विवेक और उसके आधुनिक मन ने उन्हें उनके भीतर से ही खोजा और पाया है और उन्हें अपने समय के संदर्भों में नया अर्थ देते हुए, उसी रूप में प्रस्तुत किया है। **'अजेय कर्ण'** का कर्ण हमारे अपने समय का, आधुनिक मन वाले एक रचनाकार की अपनी आँख से देखा और उकेरा गया कर्ण तो है ही, वह उतना ही महाभारत का कर्ण भी है। **'अजेय कर्ण'** में कर्ण की जो छबि उद्घाटित हुई है, वह कर्ण के बारे में चली आ रही धारणा की अनुरूपता में है, इसी नाते उसे आज की लोक स्वीकृति भी है।

महाभारत के इस कर्ण पर भारतीय साहित्य में बहुत कुछ लिखा गया है – गद्य में भी और पद्य में भी। उसके पौरूष, उसकी दानवीरता की कहानी भी कही गई है और उसके प्रति बरती गई उपेक्षा, सूतपुत्र कहकर बार बार अपमानित किए जाने वाले उससे जुड़े प्रसंगों को लेकर रचनाकारों की भरपूर संवेदना भी उसे मिली है। **'रश्मिरथी'** काव्य में अपने समय के अनुरूप दिनकर ने उसे दलितों और उपेक्षितों के नेता–प्रवक्ता के रूप में भी पेश किया है।

**विष्णु विराट मेरी दृष्टि में कदाचित पहले कवि या रचनाकार हैं जिन्होंने कर्ण के चरित्र के साथ जुड़े इन प्रसंगों को उभारते हुए भी, अपनी कविता के केन्द्र में, जीवन के अंतिम क्षणों में किए गए उसके आत्म–मंथन को पेश किया है।** यह उनकी सर्जनात्मक कल्पना की मौलिकता तो है ही उनके अपने रचनात्मक विवेक से एक प्रीतिकर साक्षात्कार भी है, जिसके तहत कर्ण की अंतिम क्षणों की मनोभूमि, उसका आतरिक उव्देलन, अपने किए का लेखा–जोखा, उपेक्षा–अपमान के दंश सामाजिक संरचना की भेद–भावपूर्ण इयन्ता, यह सब तो उद्घाटित हुआ ही है, उसके अपने अस्तित्व का वह

पहलू भी सामने आया है, जिसका उसके लिए कभी कोई देय नहीं रहा, वो बस दूसरो के लिए ही अपने को हमेशा देता और उलीचता रहा, जिसने हमेशा दंश ही पाया अपमान ही भोगा, बस दूसरों के लिए अपने को लुटाता और क्षार-क्षार करता रहा। सबसे बड़ी बात यह कि विष्णु विराट ने अपनी इस कविता में केन्द्रीय महत्व दिया है – युद्ध की बर्बरता और अमानवीयता को, युद्ध के विध्वंसकारी चरित्र को, युद्ध जिनके पीछे मात्र सत्ता-लोलुपों और सत्ताधारियों का, महत्वाकांक्षियों और अभिमानियों का दर्प, अहंकार और तृष्णा होती है। युद्ध, जीवन में जो भी शुभ, सुन्दर और वांछनीय है, उसे ध्वस्त कर देते हैं, युद्ध जिनमें जन और धन की अपूर्णीय क्षति तो होती ही है, जो आगामी समयों में बी इतना विष घोल देते हैं कि आदमीयत उससे उबर नहीं पाती। बहुत समझ बूझ कर कवि ने अपनी कविता को **'रण-वैचारिकी'** की संज्ञा दी है। **कर्ण के आख्यान को युद्ध-विरोध की केन्द्रीयता में प्रस्तुत करने वाली कदाचित यह पहली कविता है।** युद्ध कितना घृण्य है, कितना अहेतुक है, कितना बर्बर और अमानवीय है, कर्ण का उसके अंतिम क्षणों का यह बोध, सारी कविता को एकदम समकालीन अर्थवत्ता देता है, हमारे उस समय की चिंताओं से उसे जोड़ता है जो युद्धों की, विनाशकारी लपेट में फँसा समय है – कर्ण के आत्ममंथन का ही नवनीत है यह – उसका युद्ध – विरोध **''कौन नंगा हो गया इस महारण में / द्रोण का दौर्बल्य / अथवा भीष्म की अतिवृद्ध कांक्षा का अनिर्णय / क्या नियति है / इस विजन में प्रेत – जैसा / कर्ण अपना शव उठाए घूमता है / ..... यह महाभारत स्वयं अभिशाप हैं / धृतराष्ट्र के अंधत्व की काली निशा का / यह अमंगल है, अनीती के चलन का / रोक दो यह यज्ञ / जिसमें होम होते वीर / यह, घृत, काष्ठ – जैसे / रोक दो यह यज्ञ / अपने राष्ट्र का पौरूष्य जिसमें भस्म होता / रोक दो दुर्नीति की संयोजना यह / यह अनीती की प्रतिष्ठा का प्रवंचन / ..... कौन विजयी है विनाशी इस समर में / युद्ध के मलवे, रुधिर की कीच / इन दुर्गंधते खण्डित शवों पर / कौन**

महिमामय यहाँ शासन करेगा / ये रूदन – चीत्कार / ये – वैधव्य के क्रंदन / कहीं पर दूर रोती – कलपती / मां, बहन, बच्चे, बंधु–बांधव / वे अपाहिज लोग / ये शोषित दमित सब / कब तलक लादे गए रण – पाप पीते रहेंगे / और नंगी हो गई यह सभ्यता जीते रहेंगे।''

युद्ध की विभीषिकाओं का चित्रण हिन्दी कविता में बहुत हुआ है। धर्मवीर भारती, नरेश मेहता और दिनकर ने काफी कुछ लिख है युद्ध की बर्बरताओं और विनाश पर किंतु विष्णु विराट की कलम से लिखा गया युद्ध की बर्बरता का आख्यान इनसे किसी भी करद कम प्रभावी नहीं है। कविताई विष्णु विराट को विरासत में भी मिली है और उन्होंने उसे अर्जित भी किया है – ओज के स्वरों को उनकी कविता में हम निराला और दिनकर, केदार की परंपरा में ही सुनते हैं – उनके पास भाषा की सम्पदा है, ओजस्वी स्वरों की गूंज है और उनकी सर्जनात्मक कल्पना में विचार को संश्लिष्ट बिम्बों में प्रस्तुत कर देने की क्षमता। इसी नाते ओज के चरम क्षणों में भी उनकी कविता वक्तव्य या बयान नहीं बनती, विवरणों और ब्योरों को नहीं देती, वह रुप देती है भावों और विचारों को, उन्हें चित्रों में ढालकर। सचमुच पौरूष और ओज के उनके स्वर हमें निराला और दिनकर की याद दिलाते हैं।

युद्ध विरोध की केन्द्रीयता को लेकर रचे गए कर्ण के इस आत्ममंथन में विष्णु विराट कर्ण के मानस में गहरे उतरे हैं। कर्ण का अपना दंश, अपनी टीस, जीवन भर अपमानित होते रहने की पीड़ा और आक्रोश, निर्दोष होते हुए भी अपमान के विष को आजीवन पीते रहने की यह नियति, यह सब तो कविता में अपनी पूरी प्रभाव–सघनता के साथ अभिव्यक्त हुआ ही है, कविता के वे स्थल भी बेहद प्रभावी हैं, जहाँ वह धिक्कारता है, सामाजिक अन्याय और भेदों की नींव पर रची गई–व्यवस्था की इस इमारत और

उसके कर्ताओं को, आदमी को बडे–छोटों में बाँटने वाले विधान को, और कुंती–अपनी मां कुंती से पराजित होने के स्वीकार्य के बावजूद – स्वयं कुंती को, ऐसे शब्दों में, इतनी आंतरिक घृणा के साथ, कि उसका एक–एक शब्द ज्वलंत अग्निपिंड की तरह लगता है – **बाँटती हो तुम द्रुपद की लाड़ली को / मांस – पिंडों की तरह / वन श्रृंगालों को / पाँच आखेटी अकेली वन – मृगी को मर्दते थे / कुल वधू वह नारि / जो व्यभिचार व्याही / वसना की वेदि पर बलिदान कर दी। मातु कुंती की कृपा से द्रौपदी वह / किस तरह वेश्या हुई परिवार में ही। ..... और यह षड्यंत्र का दुर्व्यूह / कुंती / कल तलक ये / नई संस्कृति में हरा होकर उगेगा / आचरण, मर्याद तोड़ेगा तुम्हारा नाम / तुम इतिहास को इतना चबाओ मत / कि कल का नया सूरज / दृष्टि ही खो दे तुम्हारी इस कृपा से / तुम नहीं हो मातु / तुम भार्या नहीं हो / तुम नहीं हो नारि / तुम कुछ भी नहीं हो / स्वार्थ की सड़गंध का अनुभास भर हो। दूर हो जाओ दहकते दृष्टि पथ से / मैं किसी औचित्य का कांक्षी नहीं हूँ।**

कर्ण आत्ममंथन के क्षणों में अपने को भी धिक्कारता है, आत्मभर्त्सना भी करता है – वह श्री कृष्ण तक को अपनी भर्त्सना की चपेट में लेता है – पूछता है उनसे, उनकी सारी महिमा के बावजूद – **और मनमोहन, कहो तुम / तुम कहाँ तक पाण्डवों के पक्ष में पुंसत्व दोगे। कब तलक इस पार्थ को चलना सिखाओगे / समर में / कब तलक हाँका करोगे दूसरों के रथ / तुम, तुम्हारी दिव्य गीता, कृष्ण / बस, कुछ कृपापात्रों के कवच / बनती रहेगी / ये महाभारत सदा चलता रहेगा / रात्रि को छः मास तक लंबा न खींचों / यह तुम्हारे रास का स्थल नहीं है / युद्ध है / विध्वंस की विष – सर्पिणी है।**

बहुत कुछ विचारणीय, मननीय इस छोटी सी, काव्य रचना में है। विष्णु विराट के कवि ने गहरी संवेदना तथा बडी मानवीय चिन्ता के साथ इस कविता को रचा है। उनकी

अभिव्यक्ति बहुत प्रभावी बनकर कविता में आई है। कहीं-कहीं भाषा के साथ, शब्दों के स्वरूप के साथ स्वतंत्रता बरती गई है, उन्हें लय और तुक के माफिक बनाया है, परंतु कवि को, सर्जक को भाषा में इतनी छूट लेने का अधिकार है।[८४]

गुजरात के ऐसे अनेक वरिष्ठ साहित्यकार हैं, जिन्होंने अपने विशिष्ट लेखन से गुजरात में अपनी पहचान दर्ज कराई है। यहाँ गजल, प्रबंध काव्य, हाइकू, गीत, नवगीत तथा गद्य की तमाम विधाओं में विद्वान सर्जकों ने अपनी लेखनी चलाई है। कुछ विशिष्ट साहित्य विधाओं का सामान्य विवरण प्रस्तुत है –

**गुजरात का ग़ज़ल साहित्य :**

प्रो. भागवत प्रसाद मिश्र नियाज की दृष्टि में गजल से सम्बन्धित इस जानकारी के बाद जब हम गुजरात के गजल साहित्य पर दृष्टि डालते हैं, तो हमें ज्ञात होता है कि यहाँ के शायरों और कवियों ने १९वीं सदी के प्रारंभ से ही उर्दू के समानान्तर गुजराती में ग़ज़ल लिखना आरंभ कर दिया था। वे मूल स्वर को पहचानते थे और उन्होंने अपनी ग़ज़लों में प्रेम की बड़ी सुन्दर अभिव्यंजना की है। यहाँ एक उदाहरण प्रस्तुत है। कविता 'कल और आज' के अंतर्गत डॉ. रजनीकान्त जोशी ने कविवर 'कलापी' का उल्लेख किया है। 'कलापी' लाडी के राज-परिवार के युवराज थे। उनका पूरा नाम था गोहिल सुरसिंह जी तख़्तसिंह ज़ी। वे अंग्रेजी, संस्कृत और उर्दू-फ़ारसी के ज्ञाता थे। उनका काव्य-संग्रह 'कलापी नो केकारव' प्रकाशित हुआ उसकी एक सुप्रसिद्ध रचना है 'आपनी यादी', इसका अनुवाद हिन्दी-गुजराती के प्रसिद्ध शायर डॉ. सतीन देसाई 'परवेज़' द्वारा किया गया है। उस अनुवाद के प्रारंभिक दो शेर इस प्रकार हैं –

**'ठरहे जहां मेरी नज़र यादें वहाँ हैं आपकी।**

**बहतीं ये चश्मे-नम से भी यादें जवाँ हैं आपकी।**

माशूक़ के रुख़सार की इन सुर्ख़ियों में सुर्ख़ियत,

है गुल जहाँ गुलशन जहाँ, शक्लें वहां हैं आपकी।'[८५]

उल्लेखनीय है कि गुजरात की उर्वरा साहित्यिक भूमि पर गुजराती, हिन्दी और उर्दू की त्रिवेणी का जो संगम देखने को मिलता है वैसे अन्य अहिन्दी–भाषी प्रदेशों में कम ही है। यहाँ के कुछ उल्लेखनीय शायर हैं शेख़आदम आबूवाला, आदिल मंसूरी, रहमत अमरोहवी, महमूद अलवी, सरशार बुलंदशहरी, जोज़फ़ अनवर, चीनू मोदी, अमृत घायल आदि। इनमें से अधिकांश ने गुजराती और हिन्दी–दोनों में रचना की है। इनसे हटकर अनेक हिन्दी भाषी कवि हैं जिन्होंने अत्यंत सुंदर ग़ज़लें लिखी हैं। इनमें से प्रमुख हैं – भागवतप्रसाद मिश्र 'नियाज', भगवानदास जैन, डॉ. अश्विनीकुमार पाण्डेय, मरियम ग़ज़ाला, सुल्तान अहमद 'पठान', गोपाल शुल्क 'तपिश', अंजना संधीर, डॉ. सतीन देसाई 'परवेज़', विजय तिवारी, प्रमोदशंकर कुश 'तन्हा', सुलभ धांधुकिया, द्वारिकाप्रसाद साँचीहर, प्रमोदशंकर मिश्र आदि। इनमें से अधिकांश गीत और ग़ज़लकार दोनों हैं और उनकी ग़ज़लों में गीतों का रंग देखा जा सकता है। लेकिन सही अर्थों में वही कवि या शायर अभिनन्दनीय है जिसकी पकड़ दोनों पर मजबूत हो और गीत को गीत और गजल को ग़ज़ल बनाये रखने में सक्षम हो। इस अवसर पर भगवानादस जैन का उल्लेख अप्रासंगिक न होगा। क्योंकि मेरी जानकारी में वे ही एकमात्र गजलकार हैं जिन्होंने लोक भाषा में भी सफल ग़ज़लें कही हैं। उनकी बुंदेलखंडी में रची गयी ग़ज़ल 'रामदुहाई' के प्रारम्भिक कुछ शेर इस प्रकार हैं –

'घाम ततूरी करऊँन छैया राम दुहाई / मारग काटो बिना पनइयां रामदुहाई / जान को गाहक निकरो ऊतो जीको समझे / खेल में हम तो अपनी गुइयाँ राम दुहाई /

कपट जाल जो कौन बिछाओ जी में फँसके / तल फत हैं मासूम चिरैयाँ राम दुहाई / हमसे बनत न बोलत राजा ठकुरसुहाती / कैसे देखें दिन में तरइयाँ राम दुहाई /'[८६]

इनती कडी धूप में कि रखते ही पैर जल जाते हैं। छाया का कहीं नाम ही नहीं है। ऐसे में बिना जूतों के (मैंने) यह मार्ग तै किया है। भाग्य की बात देखिए कि जिसको हमने खेल खेल में अपना मित्र समझा था वही (मेरे) प्राणों का ग्राहक निकला। वह कौन है जिसने यह छल-कपट का जाल फैला दिया है। जिसमें फँसकर मासूम चिड़ियाँ फड़फड़ा रही हैं। हे राजा ! स्वामी मुझसे ठकुरसुहाती करते नहीं बनती अतः मैं कैसे कह दूँ कि मुझे दिन में भी तारे दिखलाई पड़ते हैं।

**दशा और दिशा :**

इस प्रकार गुजरात का ग़ज़ल साहित्य अत्यंत समृद्ध है। साथ ही विधा के रूप में हिन्दी के कवि और शायरों ने इसमें जमकर लिखा है। अतः इस स्थल पर तनिक उस पर दृष्टिपात करना आवश्यक है। उर्दू के प्रसिद्ध शायर बशीरबद्र अपने आलेख – 'जिन्दगी का मासूम नग़्मा है गज़ल' में कहते हैं –

'आज हिन्दी और उर्दू में पाँच हजार साल का भारत सोया हुआ है, जिसकी कहानियाँ हमारा इतिहास है। संस्कृत का यह सबसे नया रूप जब गजल बन जाता है तो उसके लहू में ४-५ हजार साल की आत्मा तहज़ीब और उसका हर लम्हा न समझ में आने वाली तब्दीली बनकर आता है। ग़ज़ल इसी ज़िन्दगी का एक मासूम नग़्मा है।'[८७]

गजल लेखन की प्रक्रिया प्रारम्भ में तो ग़जल के रूमानी स्वरूप को लेकर ही चली। अमीर ख़ुसरो ने भी इसी से उसकी शुरूआत की। किन्तु आगे चलकर यह व्यष्टि से समष्टि की ओर मुड गयी। दुष्यन्तकुमार ने हिन्दी ग़ज़ल को एक नया मोड दिया। पर आज भी ऐसे अनेक कवि और शायर हैं जो दुष्यन्तकुमार को हिन्दी ग़जल का जन्मदाता कहते

हैं। पर यह गलत है। अपने कथन की पुष्टि में मैं नीरन के एक आलेख 'गजल : एक दृष्टि' से उद्धृत करना चाहूँगा –

हिन्दी में गज़ल लिखने का प्रचलन यद्यपि भारतेन्दु के समय से ही हो चुका था, लेकिन गज़ल को सही रूप में लोकप्रियता बलबीर सिंह रंग के ही कारण मिली थी। जब रंगने कवि – सम्मेलनों और मुशायरों के मंच से (जिस में अनेक बार नीरज और मैं भी उपस्थित रहता था)। अपनी धीर गम्भीर वाणी से ग़ज़लों का पाठ करते थे, तो समस्त श्रोता समूह मंत्रमुग्ध हो कर उन्हें सुना करता था। छोटी से छोटी बहर में लिखी हुई उनकी गज़लें आज भी उनकी जबान पर चढ़ी हुई हैं। उनकी निम्नलिखित पंक्तियाँ देखिए–

**आबोदाना रहे, रहे न रहे। ये ज़माना रहे, रहे न रहे।**

**रंग की अंजुमन से निस्बत है। आना जाना रहे, रहे न रहे।**

**– बलवीर सिंह रंग**

यद्यपि हिन्दी ग़जल को प्रतिष्ठित करने में दुष्यन्त कुमार का बहुत बड़ा योगदान है, लेकिन उनेस पूर्व ग़ज़ल को लोकप्रिय बनाने में जितना योगदान रंग जी का रहा है, उसका किसी भी आलोचक ने नोटिस नहीं लिया।"

यहाँ पर यह कहना अनुचित न होगा कि नीरज और रंग के साथ–साथ बल्कि उसके भी पहले मैंने हिन्दी ग़जल लिखना प्रारम्भ कर दिया था। यदि मेरी सन् १९३८ से लेकर १९४२ तक की ग़ज़लों को (जो अभी अप्रकाशित हैं) छोड़ भी दिया जाए, तो सभी जज़्बात में छपी प्रथम ग़ज़ल का रचनाकाल ११–२–४२ है जब कि दुष्यन्त जी का रचनाकाल पिछली सदी का छठा दशक कहा जा सकता है। फिर भी इस बात से इनकार

नहीं किया जा सकता कि गजल के क्षेत्र में दुष्यन्त का आर्विभाव निश्चय ही कथ्य में एक नयी दिशा का जन्म था। वे सभवतः पहले कवि थे जिन्होंने रचनाकार के व्यक्तिगत दुःख दर्द को आम आदमी तक पहुँचाया और अपने मौलिक और उत्कृष्ट बिम्ब विधान, प्रतीकों तथा व्यंजना के माध्यम से गज़ल को एक नया आयाम प्रदान किया। पर उनकी सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि ऐसा करते हुए भी उन्होंने ग़ज़ल की मूल आत्मा, उसकी गहरी संवेदना और सौंदर्य बोध को नष्ट नहीं होने दिया। उनकी ग़ज़लें कथ्य और शिल्प दोनों दृष्टियों से उच्च स्तरीय हैं। खेद है उनके बाद उनके अनुयायी और समर्थक इसका निर्वाह नहीं करते। फलस्वरूप आज की आम हिन्दी ग़ज़ल का स्तर दुष्यन्त की गज़लों से नीचा है, कभी-कभी अत्यंत साधारण।

गुजरात के ग़ज़लकारों में वे सभी विशेषताएँ विद्यमान हैं जिनका उल्लेख ऊपर किया गया है। प्रत्येक क्षेत्र के कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं -

**प्रेमाभिव्यक्ति (इश्क़े-मजाज़ी) :**

१. चलते चलते वो अचानक रुक गये / बज़्म की नज़रों के साये झुक गए / देख ले जी भरक के किसकी ताब है / यूँ कहो उड़ती नज़र वो दिख गए / हुस्न क्या है जैसे नूर-ए-आफ़ताब / हंस दिए तो सारे बादल छट गए / यूँ लबों से फूटकर निकली खुशी / सारे ग़म आबे-खाँ में मिट गए।(नियाज़-जज़्बात)

२. है नशे में या तबीयत आपकी नासाज़ है / दोस्त तुझको कह रहा है आज 'तू', क्या राज़ है / गीत खुशियों के भी आख़िर बन के आँसू बह चले / वक्त के हाथों में शायद दर्द का इक साज़ है।

(ऋषिपाल धीमान 'ऋषि'-शबनमी अहसास)

३. इस हथेली पे कोई हाथ रहा था अक्सर।

तार से दिल के कोई तार बंधा था अक्सर।

चाँदनी रात में महका हुआ गुलशन था कभी,

झील में सोने का इक फूल खिला था अक्सर।

आगरा में ही नहीं एक फ़क़त ताजमहल,

हर मुहब्बत भरे दिल में वो बना था अक्सर।

(मरियम ग़ज़ाला–क्षितिज की दहलीज़ पर)

४. श्याम आयें न आयें लौट कर गोकुल कभी।

बाट में पलकें बिछाये राधिका होगी ज़रूर।

वाद्य का संगीत इतना हो नहीं सकता मधुर,

पार्श्व में उसके सुरीली गायिका होगी जरूर।

(अश्विनी कुमार पाण्डेय – अहसास के साये तले)

**इश्क़े–हक़ीक़ी :**

१. सूरज की किरणों में मैंने अगणित रंग बदलते देखे।

क्षण में शिखर उबलते देखे, क्षण में शिखर पिघलते देखे।

तट पर मैंने नौकाओं को डगमग डगमग होते देखा,

किन्तु नदी की धाराओं में मांझी सदा संभलते देखे।

(डॉ. किशोर काबरा–चंदन हो गया हूँ)

२. जहाँ भी देखिए जल्वा उसी का मिलता है,

उसीको देख बगीचे में फूल खिलता है,

नसीम कान में आ उसके गुनगुनाती है,

बिना ख़ुदा की रज़ा के न पात हिलता है, (नियाज–तलाश)

**व्यष्टि से समष्टि की ओर सामाजिक चेतना :**

१. हरेक सिम्त दहकते हुए सवाल तो देख।

कभी उठाके नज़र ज़िन्दगी के हाल तो देख।

तमाम उम्र रहा मुंतज़िर बहार का मैं,

ख़िजाँ के दौर में नाज़ुक मेरा ख़याल तो देख। (भगवानदास जैन)

२. कुछ हसीं सपने दिखाकर चंद रोज़।

छल किया अपना बनाकर चंद रोज़।

ज़ीस्त क्या है जान लेगा, घूम ले

लाश कांधे पर उठाकर चद रोज। (भगवानदास जैन, कटघरे में हूँ)

**सामाजिक विसंगति :**

इक तरफ ये झुग्गियाँ हैं, इक तरफ ऊँची इमारत।

इक तरफ़ फ़ाका कशी है, इक तरफ़ कातिल तिजारत।

(डॉ. दयाचन्द जैन, दर्द का रिश्ता)

**भ्रष्टाचार :**

१. ईमानदारी का नहीं मिलता अता पता।

अखबार मे पढ़ा है मैंने इश्तिहार दोस्त।

अंधों के इस नगर में गुज़र होगा किस तरह,

है ख्वाब बेचने का मेरा कारोबार दोस्त। (साहिल–साहित्य संहिता)

२. रौशन सितारे रौशनी सब खा गये।

ग़म का गहरादाग़ दिल दिखला गये।

दर्द दिल में भरा शमा, बुझने लगी,

राज़ जीने का सभी कुछ पा गए। (सुलभ धंधुकिया–चले आओ तुम)

**धर्म और साम्प्रदायिकता :**

१. कोई उन्हें बताये किस पर गिर रहे हैं।

अपनी ही बस्तियों पर पत्थर गिर रहे हैं।

तारीख़ का उजाला क्या खूब रंग लाया,

कुछ खंडहरों की ख़ातिर वे घर गिर रहे हैं।

(सुलतान अहमद पठान, ख़ामोशियों में बंद ज्वालामुखी)

**नैतिकता का अवमूल्यन :**

१. देश आगे बढ़ रहा, जनता पड़ी बेहाल है।

देखता हूँ आदमी ही आदमी का काल है।

देश का चारित्र्य अब चलचित्र जैसा दीखता,

मारकर नायक को देखो, खल हुआ महिपाल है। (जयसिंह व्यथित)

२. आज मुझको ये क्या हो गया? मेरे दिल का सुकूँ खो गया।

ढूंढ़ते हम रहे भीड़ में आज इंसा कहाँ खो गया।

(जितेन्द्र सिंह चौहान, समकालीन कविता)

**सौन्दर्यबोध एवं नए बिम्ब :**

१. सियाह पड़ गए साये मगर न रात हुई,

फुंगा में झुलसी हुई शाम जैसा लगता है।

आईना-ए-दिल टूट गया जब,

अब न दराज़ें भरो 'नियाज़'

क़तरा-क़तरा लहू जो टपके

उसको भी पी लेने दो। (नियाज़-अप्रकाशित)

२. दान की बछिया-सी हमको मिली हैं साँसें

यह देह तो किराये का इक मकान है।

पर्वत-सी ज़िन्दगी और बोझ धड़कनों का,

क्या पता किस मोड़ पर कितनी ढलान है? (शिवा कनाटे-शब्दोत्सव)

३. वैसे तो हर शब्द शबनम, पंक्ति भी हर सुरमई,

पर बना अंगार देखो गीत का हर छंद है। (रामचेत वर्मा, पछुआ के हस्ताक्षर)

४. मिट्टी मिट्टी रात दिल के सींकचों में।

जज्ब हैं जज्बात दिल के सीकचों में।

ये क़फ़स किसके ख़यालों ने बुना,

बरसती बरसात दिल के सीकचों में। (डॉ. द्वारिका प्रसाद साँचीहर)

**शिल्प विधान :**

गुजरात के हिन्दी ग़जलकारों के शिल्प विधान के संबंध में भी वही बात कही जा सकती है, जो अन्य हिन्दी ग़ज़लकारों के सम्बन्ध में। ग़ज़ल लिखना कोई सामान्य बात नहीं है। इसके लिए श्रम और साधना की आवश्यकता है। खेद है कि आज का हिन्दी ग़ज़लकार इससे बचना चाहता है और पलक मारते लोकप्रिय बन जाना चाहता है। पर यह न उसके हित में है, न ग़ज़ल के। इस सम्बन्ध में विद्वान प्रवर डॉ. अम्बाशंकर नागर की ये पंक्तियाँ रखना चाहता हूँ। –

'काव्य के जितने प्रकार या रूप हैं ग़ज़ल उन सब में तंगदामन और नाजुक है। सूई की नोक में डोरा पिरोने की तरह गजल नफ़ासत से भावों को पिरोना पड़ता है और इस बात का ध्यान रखना पडता है कि वे उसे ज़रा–सी भी ठेस न लगे। वजन की जरा–सी कमी भी अच्छी–से–अच्छी ग़ज़ल टच–मी–नॉट की तरह मुरझा जाती है। इन सब खतरों और पाबंदियों के बावजूद गजल लिखनेवाले बहर और रदीफ़ क़ाफिये का निर्वाह करते हुए भावों के सतरंगी डोरों से ग़ज़ल का दिलकश ताना बाना बुनते ही हैं। .. '

(डॉ. अम्बाशंकर नागर, भूमिका 'जज़्बात')

इसी बात को जनाब रहमत अमरोहवी ने अपने एक शेर में कहा है –

'ग़जल और तंगदामानी का रिश्ता,

सलीका हो तो गुंजाइश बड़ी है।'

(रहमत अमरोहवी – 'इजाफा)

यही एक कारण है कि आप कितना ही अच्छा लिखें उर्दू गजलकार आपको अपने समकक्ष नहीं समझते। साज़ जबलपुरी ने 'ग़ज़ल के मूल तत्व' नामक आलेख में इस बात की ओर ध्यान खींचा है। उनके अनुसार शास्त्रीय संगीत की भाँति उर्दू ग़ज़लकारों में भी गुरु–शिष्य परम्परा रही है। हर नया शायर किसी न किसी क़दावर शायर को अपना उस्ताद बनाता है और उससे सलाह लेता है। नतीजतन उसकी ग़ज़ल काफ़ी मंजी हुई और पुर असर होती है। हिन्दी में यह परम्परा न होने के कारण कथ्य की मौलिकता और व्यापकता होते हुए भी शिल्प की दृष्टि से अनेक ग़ज़लें शिथिल होती हैं। दुःख की बात यह है कि हिन्दी की साहित्यिक पत्रिकाओं के अनेक सम्पादक बिना किसी सुधार के इन ग़ज़लों को वैसा ही छाप देते हैं।[८९]

हिन्दी में गजल लेखन के प्रति आकर्षण दुष्यन्त कुमार से प्रारंभ हुआ। दुष्यन्त कुमार ने हिन्दी सोच के तहत ग़ज़ल को एक नई पहचान दी। नीरज ने भी गज़ल–लेखन में लोकप्रियता सिद्ध की किन्तु नीरज की गज़लें हिन्दी गीतों की प्रकृति के समानान्तर चलीं। प्रो. भगवानदास जैन के अनुसार – ''दुष्यन्त के बाद हिन्दी गजल के क्षेत्र में कई महत्वपूर्ण प्रतिभाएँ सामने आईं। कुँअर बेचैन, सूर्यभानु गुप्त, भवानी शंकर, शेरजंग गर्ग, चन्द्रसेन विराट, गोपालदास 'नीरज', माहेश्वर तिवारी, डॉ. राही मासूम रजा, बशीर अहमद मयूख, नईम आदि ने हिन्दी काव्य को अपनी स्तरीय गजलों से समृद्ध किय है। हिन्दी गजल ने अपनी इस विकास–यात्रा में अनेक झंझावतों और विघ्न–बाधाओं को भी झेला है। बेबुनियाद विरोध, एकांगी कटु आलोचना, पक्षपातपूर्ण तंग नज़रिया आदि तूफानों से टकराते–जूझते हुए आज हिन्दी ग़जल जिस मुकाम पर पहुँची है उसे देखते हुए लगात

है कि आज हिन्दी गजल ने समकालीन अनेक कवियों की कलम पर ही नहीं, वरन् जनसाधारण से लेकर प्रबुद्ध पाठकों के दिलों पर भी अपना प्रभुत्व जमा लिया है। आज तो स्थिति यह है कि प्रतिष्ठित और नवोदित अनेक कवि ग़ज़ल–रचना में प्रवृत्त है। हिन्दी के प्रतिष्ठित समकालीन ग़ज़लकारों में कुछ महत्वपूर्ण सशक्त हस्ताक्षर इस प्रकार हैं – ज्ञानप्रकाश विवेक, बल्ली चीमा, राजेश रेड्डी, रोहिताश्व अस्थाना, शिवओम अंबर, चिरंजीत, बुद्धिसेन शर्मा, गिरिराजशरण अग्रवाल, अदम गोंडवी, निदा फाज़ली, नूर मुहम्मद नूर, एहतराम इस्लाम, रऊफ परवेज़, विनोदकुमार डइके, सागर मीरजापुरी, रामगोपाल शुक्ल 'तपिश', सावित्री परमार, महाश्वेता चतुर्वेदी, रॉबिन शॉ पुण्य, जहीर कुरेशी, अशोक अंजुम, रामकुमार कृषक, हनुमंत नायडू आदि।

**गुजरात की समकालीन हिन्दी ग़ज़ल :**

देश का पश्चिमांचल गुजरात भी आज हिन्दी की अन्यान्य साहित्य–विधाओं के साथ–साथ हिन्दी ग़ज़ल–यात्रा में निरंतर गतिशील किंवा प्रगतिशील है। गुजरात में उर्दू और गुजराती गज़ल साहित्य पर्याप्त प्राचीन और समृद्ध है। अब इधर पिछले ढाई–तीन दशकों से हिन्दी गजलें भी पर्याप्त मात्रा में लिखी गई हैं और निरंतर लिखी जा रही है। अहमदाबाद, सूरत, भड़ौच, बड़ौदा और पालनपुर तो जैसे ग़ज़ल के गढ़ ही है। गुजरात के कतिपय प्रतिष्ठित ग़ज़लकार और उनके चर्चित ग़ज़ल–संग्रहों के नाम निम्नलिखित हैं –

(१) शेखादम आबूवाला – घिरते बादल : धुलते बादल

(२) वसीम मलिक – तपिश

(३) सुल्तान अहमद – (१) खामोशियों में बंद ज्वालामुखी

(२) नदी की चीख

| | | | |
|---|---|---|---|
| (४) | भगवानदास जैन | – | (१) ज़िंदा है आईना, (२) क़टघरे में हूँ |
| (५) | भागवतप्रसाद मिश्र 'नियाज' | – | (१) जज्बात, (२) तलाश, |
| | | | (३) आख़िरी दौर |
| (६) | दयाचंद जैन | – | दर्द का रिश्ता |
| (७) | ऋषिपाल धीमान | – | (१) शबनमी अहसास (२) हवा के काँधे पै |
| (८) | अश्विनीकुमार पाण्डेय | – | अहसास के साये तले |
| (९) | मरियम गज़ाला | – | क्षितिज की दहलीज़ पर |
| (१०) | सुरेश शर्मा कांत | – | सच कहना |
| (११) | अंजना संधीर | – | (१) बारिशों का मौसम, |
| | | | (२) धूप, छाँव और आँगन |
| (१२) | लक्ष्मी पटेल 'शबनम' | – | कागज़ी रिश्ते |
| (१३) | डॉ. रशीद मीर | – | धूप के रंग |
| (१४) | जोज़फ अनवर | – | पगडंडियां |
| (१५) | नयन देसाई | – | धूप का साया |
| (१६) | रहमत अमरोहवी | – | रतजगे, इजाफा |
| (१७) | किशोर काबरा | – | चंदन हो गया हूँ |
| (१८) | विजयकुमार तिवारी | – | फल खाए शज़र |

(१९) रमेशचंद्र शर्मा 'चंद्र' – लेकिन कब तक

(२०) नवनीत ठक्कर – चिलमनी यादों के महरूमी साये

(२१) प्रमोदशंकर मिश्र – चलो चलें, पढ़ें ग़जल

उपर्युक्त प्रतिष्ठित ग़ज़लकारों के अतिरिक्त सर्व श्री डॉ. द्वारिकाप्रसाद साँचीहर, रामचेत वर्मा, चंद्रमोहन तिवारी, प्रमोदकुमार कुश 'तन्हा', चंद्रपालसिंह यादव, बसंत ठाकुर, बसंत परिहार, प्रणव भारती, समरथमल जैन, सुलभ धंधुकिया आदि की मुख्तलिफ़ रंग, मिज़ाज और तेवर की ग़ज़लें पश्चिमांचल (अहमदाबाद) से प्रकाशित विभिन्न सहयोगी काव्य–संकलनों में भी प्रकाशित हैं। यद्यपि गुजरात से हिन्दी का ऐसा कोई सहयोगी ग़जल–संग्रह अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ जो समकालीन हिन्दी गज़ल–साहित्य के क्षेत्र में संपूर्ण गुजरात का प्रतिनिधित्व कर सके, तथापि कतिपय महत्वपूर्ण काव्य–संग्रह निम्नलिखित हैं, जिनमें गुजरात के प्रतिनिधि कवियों की कविताएँ और ग़ज़लें संग्रहीत हैं :

१. समकालीन हिन्दी कविता : गुजरात (संपा., डॉ. अम्बाशंकर नागर)

२. नई धरती नया आकाश (संपा., डॉ. अम्बाशंकर नागर, डॉ. रामकुमार गुप्त)

३. पँखेरू पश्चिम के (संपा., डॉ. किशोर काबरा, रामचेत वर्मा)

४. बूँद–बूँद घट में (संपा., डॉ. किशोर काबरा)

५. पछुवाँ के हस्ताक्षर (संपा., डॉ. किशोर काबरा)

६. गवाक्ष (संपा., डॉ. किशोर काबरा)

७. राही अपनी मंजिल का (संपा., चंद्रपालसिंह यादव)

८. ध्वनिपथ के बटोही (संपा., संद्रपालसिंह यादव)

९. धरा से गगन तक (संपा , विजयकुमार तिवारी)

१०. गुजरात की समकालीन हिन्दी कविता (संपा., डॉ. अम्बाशंकर नागर)

११. संवेदना के स्वर ('साहित्यलोक प्रकाशन)

तदुपरांत लब्ध प्रतष्ठि कवि डॉ. किशोर काबरा रचित काव्य-संग्रह 'सारथि, मेरे रथ को लौटा ले', डॉ. दयाचंद जैन एवं इन पंक्तियों के लेखक के संयुक्त काव्य-संग्रह 'रोशनी की तलाश' तथा सुलभ धंधुकिया रचित काव्य-संग्रह 'चले आओ तुम' में रंगीन और संगीन दोनों प्रकार की ग़ज़लें प्राप्त होती हैं।

हिन्दी काव्याकाश के पश्चिमी क्षितिज पर शीघ्रता से उभरनेवाले ग़ज़लकारों में सर्वश्री रामगोपाल शुक्ल 'तपिश', चंद्रमोहन तिवारी, शिवा कनाटे, 'जूगनू' जयपुरी, डॉ. नवनीत ठक्कर, डॉ. हर्षदेव माधव आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।[१०]

गुजरात में गुजराती तथा उर्दू भाषा में ग़ज़लें बहुत लिखी गईं हैं तथा इन ग़ज़लों की अपनी अलग पहचान भी हैं, हिन्दी ग़जलों का मिजाज कुछ अलग ही रहा है। इनकी सोच का दायरा अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत रहा है।''

प्रो. भगवानदास जैन के अनुसार - ''जहाँ तक पश्चिमांचल की हिन्दी गज़लों का सम्बन्ध है, इधर पिछले दिनों एक महत्वपूर्ण काम यह हुआ है कि हिन्दी के सुधी समीक्षक, प्रबुद्ध कवि, संवेदनशील गीतकार व लब्धप्रतिष्ठ हाईकुकार डॉ. भगवतशरण अग्रवाल एवं प्रतिष्ठित गज़लकार डॉ. अब्बास अली ताई ने दक्षिण गुजरात के नये व पुराने ग़ज़लकारों एवं उनकी ग़जलों का एक गंभीर सर्वेक्षण किया और एक विशद भूमिका के साथ उन्हें ग्रंथस्थ किया। संपादक द्वय ने ग्रंथ में ग़ज़लों के बाबा आदमवली गुजराती (या

वली औरंगाबादी) और उनके समकालीन अन्य अनेक सूफी गजलकारों की फ़ारसी एवं गूजरी जबान मे कही गई गजलों तथा समकालीन कई गजलकारों की बहुरंगी गजलों को संग्रहीत किया है। हिन्दी साहित्य अकादमी, गुजरात ने इस ग्रंथ को 'दक्षिण गुजरात की हिन्दी गजल-यात्रा' के नाम से प्रकाशित भी किया है। इस ग्रंथ में संग्रहीत गुजरात के कुछ सशक्त समकालीन हिन्दी ग़ज़लकारों के नाम हैं - सर्वश्री मंज़र नवसारवी, डॉ. अब्बासअली ताई, 'अजनबी', राज़ नवसारवी, नयन देसाई, मुनीन्द्र आनंद, गजानन पटेल, जौहर राना, डॉ. रजनीकांत शाह, ऋषभ मेहता, रियाज़ ताई, गायत्री भट्ट, मस्त मँगेरा, बकुलेश देसाई, मनहर चौक्सी, रमेश पटेल इत्यादि।

**गुजरात की समकालीन हिन्दी ग़ज़लों की विशेषताएँ :**

पश्चिमांचल गुजरात के प्रत्येक समकालीन ग़ज़लकार की ग़ज़लों का लेखा-जोखा प्रस्तुत कर पाना तो यहाँ संभव नहीं है, किन्तु समाहार रूप के गुजरात की हिन्दी ग़ज़लों की कतिपय महत्वपूर्ण विशेषताओं को अवश्य रेखांकित किया जा सकता है।

**कथ्यगत विशेषताएँ :**

(१) **समसामयिक परिस्थितियों का चित्रण :** वर्तमान विषय एवं विद्रूप समाज-व्यवस्था, पूँजीवादी सभ्यता का शोषण-चक्र तथा कुत्सित राजनीति और स्वार्थांध राजनेताओं के भ्रष्टाचार व धर्म के क्षेत्र में व्याप्त संकीर्णता, कट्टरता एवं उच्छृंखलता पर समकालीन गज़लकारों ने जमकर कशाघात किये हैं।

(२) **महानगरीय संत्रास :** शहरी जीवन की यांत्रिकता व हृदयहीनता, भरी भीड़ में आदमी के अकेलेपन और अजनबीपन, व्यक्ति के भीतर व्याप्त विष के कारण टूटते हुए पारिवारिक व भाईचारे के रिश्ते तथा स्वार्थान्ध महासत्ताओं की छल-छद्मपूर्ण गुप्त

मंत्रणाओं के प्रति भी हमारे गजलकारों ने गहरे क्षोभ के साथ-साथ दाहक आक्रोश भी व्यक्त किया है।

**(३) प्रकृति-चित्रण एवं प्राकृतिक पर्यावरण की चिन्ता :** समकालीन ग़ज़लो मे प्रकृति के सौम्य एवं रौद्र दोनों रूपों का प्रतीकात्मक चित्रण हुआ है, साथ ही तेजी से हो रहे गाँवों के शहरीकरण एवं परिणाम स्वरूप उत्पन्न जीवन की यांत्रिकता और मानवीय संवेदनहीनता तथा पर्यावरण में व्याप्त प्रदूषण के प्रति भी समकालीन ग़ज़लकारों ने दुश्चिन्ता व्यक्त की है।

**(४) प्रेम और सौन्दर्य का चित्रण :** आधुनिक समस्या-संकुल युग में हुस्नो इश्क, शम्मा-परवाना, गुलो बुलबुल तथा मयखानों-पैमाने या रिंदोसाकी की बातें अब एकदम बेमानी लगती हैं। नये दौर का यह तकाज़ा भी है और कवियों का रचना-धर्म एवं दायित्व भी, कि अब वे देश-काल के मौजूदा हालात को मद्देनज़र रखकर ही अपनी ग़ज़लों की रचना करें, फिर भी हमारे कई ग़ज़लकार उर्दू ग़ज़लों की परंपरागत प्रणाली से प्रभावित होकर प्रेम और सौंदर्य की चिरंतन अनुभूतियों को नक़ार नहीं पाते। लिहाज़ा गुजरात की समकालीन हिन्दी ग़ज़लों में आज भी हमें अनेकत्र रूमानी स्वर सुनाई पड़ते हैं।

**(५) तग़ज्जुल का रंग :** यद्यपि पहले इश्को हुस्न के रंग को ही तग़ज्जुल माना जाता था, किन्तु जैसे कि पं. सुघोष भारद्वाज (ख़्वाब अकबराबादी) का मत है, अब तग़ज्जुल के तीन रंग हैं। इश्को हुस्न की बातें क़दीम तग़ज्जुल है, जबकि मौजूदा हालात और इन्सानी ज़िन्दगी के पसमंज़र में प्रस्तुत किया गया कोई नया ख़याल जदीद तग़ज्जुल है और जगजीवन से सम्बन्धित गंभीर चिन्तन को फ़िक्री तग़ज्जुल कहते हैं। कदीम और जदीद तग़ज्जुल के साथ-साथ गुजरात के कई ग़ज़लकारों ने अपनी ग़ज़लों में यह फिक्री तग़ज्जुल का रंग भी बखूबी निभाया है।

शिल्पगत विशेषताएँ :

(१) ग़ज़ल एक ऐसी काव्य-विद्या है जिसमें ग़जलकार के लिए लगातार मश्क और रियाज की जरूरत है। मुकम्मिल ग़ज़ल कहना यक़ीनन एक नायब फन है। ग़ज़ल-रचना का अपना एक सुनिश्चित छंदशास्त्र है। इसके लिए मत्लों-मक्तों और रदीफ-काफियों की जानकारी नाकाफी है। ग़ज़ल-लेखन के लिए मख़्सूस बहरें (छंद) निर्धारित हैं। शेर के हर मिसरे (पंक्ति) का वज़न बावन तोला पाव रत्ती एकदम बराबर और दुरुस्त होना अनिवार्य है। हर बहर के लिए निश्चित अरकान (मात्राएँ) और उनकी गणना के नियम जानना भी आत्यावश्यक है।

(२) ग़ज़ल की भाषा न तो अतिशय संस्कृतनिष्ठ हो और न ही उर्दू बहुल। भाषा के मामले में कवि का तंग नजरिया आज के युग में ग़ज़ल गाई के लिए ही नहीं, वरन् कविता मात्र की रचना के लिए घातक है। भाषा की सरलता और सुबोधता बरक़रार रखते हुए कथन में चुटीलापन और टटकापन पैदा कर देना ही ग़ज़लगोई का फन है। शब्दों का सार्थक, साभिप्राय और समुचित प्रयोग भी ग़ज़ल-रचना के लिए एक अनिवार्य शर्त है। अनावश्यक शब्दों के झमेले (Verbosity) से भी बचना चाहिए।

(३) इल्मे अरूज़ (उर्दू शाइरी के छंदशास्त्र) के मर्मज्ञ आचार्यों ने जहाँ एक ओर ग़ज़ल की खूबियाँ (गुण) बताई हैं, वहीं दूसरी ओर उन्होंने उसके संभावित ऐबों (दोषों) को भी रेखांकित किया है। यथासंभव ग़ज़लकार को ऐसे दोषों से बचना लाज़िमी है। अन्यथा ग़जल की गेयता और रवानी में ही नहीं, अपितु पठन में भी रुकावट उत्पन्न हो जाती है।

ग़ज़ल की इन तमाम बारीकियों के अपेक्षित ज्ञान के अभाव के कारण ही आज बहुत कम ऐसी ग़जलें पढ़ने को मिलती हैं जिनमें ज़बान की सलासत और अंदाजेबयाँ की

लताफत दिखाई पड़ती है। इसके विपरीत आज हिन्दी की अधिकांश ग़जलें बहर से खारिज और हिन्दी गज़लकार ग़जलगोई की कला में विफल हैं। सच पूछिए तो ऐसी निरर्थक और निकृष्ट रचनाओं को ग़जल कहना अदब और फन दोनों की तौहीन है। जिनका तथ्य साधारण और सस्ता हो तथा शिल्प ढुलमुल हो ऐसी रचनाओं को मात्रिक ग़ज़ल कहकर भी साहित्य में प्रवेश नहीं किया जा सकता। हाँ, यह बात और है कि किसी उमदा, नवीन और बेमिसाल ख़याल और अर्थात उत्कृष्ट कथ्य की दृष्टि से हम शेर की किसी छोटी या मामूली–सी कमज़ोरी को नज़र अंदाज़ कर दें। वैसे, हिन्दी में दोहा, चौपाई, सवैया, हरिगीतिका और आल्हा या वीर जैसे हिन्दी के छंदों में भी ग़ज़ल रचना के प्रयोग हुए हैं जो स्वागतेय भी हैं, बशर्ते इनमें भी छंद का समुचित निर्वाह किया गया हो।

(४) यद्यपि मुहावरेदानी और लाक्षणिक प्रयोग उर्दू ग़ज़लों की उल्लेखनीय विशेषता है जो हमें समकालीन हिन्दी ग़ज़लों में यदा–कदा देखने को मिलता है। समकालीन हिन्दी ग़ज़लों में लाक्षणिक प्रयोगों के अतिरिक्त नूतन बिम्ब–योजना और अभिनव प्रतीक–विधान का भी सफल निर्वाह मिलता है।[११]

ग़ज़ल लेखन की ही तरह हिन्दी नवगीत भी गुजरात में पर्याप्त सृजित हुए हैं।

**नवगीत :**

नवगीत हिन्दी काव्य विधा की नवीनतम गीत संस्कार है जिसमें सोच और प्रस्तुति के अभिनव प्रयोग देखे जा सकते हैं। हिन्दी नवगीतों में छान्दस बदलाव और सांस्कृतिक संचेतना की सन्निहित अपेक्षित रही है। गुजरात में अपेक्षाकृत नवगीतों का सृजन कुछ कम हुआ है। विशेषरूप से विष्णु विराट, किशोर काबरा, नवीन प्रकाश सिंह 'नवीन', बसंत

परिहार, अविनाश श्रीवास्तव, भगवानदास जैन, सुधा श्रीवास्तव, द्वारका प्रसाद सॉचीहर आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

गुजरात के नवगीतकारों नवगीत हिन्दीभाषी क्षेत्रों के रचनाकारो से कुछ भिन्न रहे हैं। यहाँ प्रतीक एवं बिम्बों के सघन वन प्रांतर न होकर, सामान्य दैनंदिनी के चित्र संयोजित किए गए हैं। सुधा श्रीवास्तव के नवगीतों में गृहस्थ संस्कृति के मनोवेग दर्शनीय हैं, जैसे –

**सांझ के बहके धुँधलके में,**

**हमारे साथ आकर बैठ जाओ,**

**थरथराते होठ की तुम**

**मधुर वंशी ले**

**हमारे कान में कुछ गुनगुनाओ.**

('दंशों के घेरे में' से)

एक अन्य नवगीत में उनका वैयक्तिक प्रणयोत्सवी मन कह उठता है –

**आज मौसम कह रहा है,**

**गीत गा ले चाँदिनी के।**

**बादलों ने भी धो दिए हैं,**

**और हवाएँ पोंछती हैं,**

**अंग चंदन चाँदिनी के।।**

(दंशों के घेरे में)

किशोर काबरा नवगीत के एक स्थापित हस्ताक्षर हैं। उनके नवगीतों की भाषा सहज है किंतु बिम्बों के अर्थ अनेक संदर्भों की ओर संकेत करते हुए अग्रसरित होते हैं, जैसे –

**एक सीड़ी धूप, सीड़ी छाँव रे।**

**जिन्दगी जैसे पहाड़ी गाँव रे।**

**शिखर की पीड़ा बिखरती खाइयों में,**

**खाइयाँ सब अतल की गहराइयों में।**

**आँसुओं के कब रुके हैं पाँव रे।**

**जिन्दगी जैसे पहाड़ी गाँव रे।।**

('गवाक्ष' – डॉ. किशोर काबरा)

एक प्रबंधात्मक काव्य के अन्तर्गत उनका नवगीतांश द्रष्टव्य है –

**नहीं भीख में मिलता कोई सिंहासन है।**

**श्रम करके जीवन में सब पाना होता है।**

**मिट्टी की मुट्ठी से दो दाने लेने को**

**मिट्टी के कण कण में मिट जाना हो।**

(नरो वा कुंजरो वा – डॉ. किशोर काबरा)

विष्णु विराट के नवगीत अपनी एक अलग पहचान छोडते हैं, वह कहते हैं –

**भेड़िये आदतों में समाने लगे,**

**फिर हिरन दृष्टि से दूर जाने लगे।**

ये कुहासा तो हाथों से हटता नहीं,

धुंध आँखों में आखिर जगह पा गई।

गर्मियाँ तफन हैं काग़जों के तहत,

**ठंड बस्ती में घर ढूँढ़ने आ गई।।**

('हाथ से छूटे कबूतर' – डॉ. विष्णु विराट)

एक अन्य नवगीत में वह लिखते हैं –

**झुको झूमो यहीं पर बरस जाओ,**

**नदी ने बादलों से**

**कहा हँसकर।**

डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ के अनुसार – विष्णु विराट के नए संग्रह – **'धूम्रवन से लौट आयीं लाल परियाँ'** को पढ़ते हुए इस बात पर आश्चर्य नहीं होता कि क्यों इन गीतों में प्रायः भयानक – विभत्स बिम्बों की बहुतायत है? यह आकस्मिक नहीं है कि इनमें 'साँप' बहुप्रयुक्त बिम्ब है –

* सिराहने साँप से

सवालों ने

चैन भरी नींद को डराया

* विषकंठी / श्रद्धाएँ अर्चेंगी

साँप–मनोरथ काले–काले

* जब भी हमने रोपे चंदन–वन

साँपों ने बस्तियाँ बसाईं

* विषभरे सवालों के इर्दगिर्द

घर–आंगन नए साँप पल गए

* चंदनवन आपने जलाए

बस्ती में साँप निकल आए – डॉ. विष्णु विराट

इनके अतिरिक्त भी जहाँ–तहाँ महौल के जहरीले होने की व्यंजना **'पेड़ों से लिपटी विषबेलियाँ'**, **'कालकूटी हालहल'**, **' विषबुझी हवाओं'**, **'विष–मंथन इन्द्रप्रस्थ कर रहा'**, **'आसन पर बैठा विषधर भुजंग'** आदि कथ्यों के माध्यम से हुई है। इसी तरह **'हर लहर में मगरमच्छों के बसेरे'**, **'हर छत पर मँडराती गिद्धों की टोलियाँ'**, **'जंगल–जंगल जागे भेड़िए।'** आदि पद परिवेश की कुरूपता को भलीभाँति व्यक्त करते हैं। मिथकीय संदर्भ कई स्थलों पर हादसों और विडम्बनाओं से मुठभेड़ कराते हैं। **'पांडव कुल लाक्षागृह में बैठा / दीपदान दुःशासन करता'** तथा **'रावण ने पाँव जमाया ऐसा। अंगद से हिला नहीं रंच'** आदि उदाहरण इस संदर्भ में द्रष्टव्य हैं। इस तरह के समस्त बिम्ब, प्रतीक, मिथक आदि इस कटु सत्य के संवाहक हैं कि मौजूदा जनतंत्र वस्तुतः जनविरोधी तंत्र है और इस **'जंगल तंत्र'** में जिनका आखेट हो रहा है – वे हैं मानवीय संवेदनाएँ और मूल्य–मर्यादाएँ। **'हिरनों के झुंड'** शीर्षक गीत में **'पेड़ पर मचान की व्यवस्था है'**, **'व्याधों के ठाँव–ठाँव जाल हैं'** और **'हिरन खोर राजा'** जैसे पद स्थिति की भयंकरता के स्पष्ट व्यंजक है। यहाँ आकर लगता हैं कि विष्णु विराट की दिलचस्पी केवल उत्तेजक ब्यौरे देने में नहीं है। वे नग्नयथार्थ के चितेरे मात्र भी नहीं है, बल्कि उनकी दृष्टि आलोचनात्मक यथार्थवादी है। अगर उन्हें कोई नदी आत्महत्या करती लगती है या **'एक तलैया सूखी जा रही'** है तो यह उनके लिए समूची मानवीय आद्रता का लोप होना है। इसी तरह जब गीतकार चिंतित

होता है कि **'जीत रहे हैं खूनी भेड़िए। हिरनों के झुंड हारते है'** या **'नदी के किनारों पर भेड़िए। हिरनों के झुण्ड कहाँ जाएँ'** तो यह वस्तुतः मानवीयकरण के दौर में मनुष्यता के हनन से उत्पन्न क्षोभ और चिंता की अभिव्यक्ति होती है।

यह भी आकस्मिक नहीं है कि इस संग्रह में **'व्यभिचार'** पद का प्रयोग बहुत हुआ है और अनेक अर्थों में हुआ है। **'कैसे व्यभिचार – भाव पालती', 'बादलों ने इस कदर व्यभिचार बोये', 'क्या करके आए व्यभिचार'** आदि पंक्तियाँ भिन्न–भिन्न संदर्भों में राजनैतिक, समाजिक, नैतिक कदाचार को उघाड़ती हैं। चाहे जला हुआ चंदन–वन हो, या आहत हिरन, या सूखती नदीं या व्यभिचारियों की करनी, इन पर गीतकार की न केवल सीधी नजर है, अपितु उसे यह भी लगता है कि इनके लिए उत्तरदायी जनतांत्रिक व्यवस्था में कहीं पीड़ितों–दुखदग्धों का विश्वास हमेशा के लिए समाप्त न हो जाए। आम आदमी की सहनशीलता अब चुक गयी है, अब वह हिंसा का सहारा लेने में भी नहीं चूकेगा –

**खतरनाक कितना हो बैठा है**
**कल तक जो डरा–डरा आदमी**
**फटने को व्यग्र हो रहा है अब**
**आखिर बारूद भरा आदमी**
**ये गुलाम लोकतंत्र, तोप का**
**आखिरी निशान हो न जाए**[१२]

गुजरात के नवगीतकारों के परिमाण सीमित हैं किन्तु विष्णु विराट तथा किशोर काबरा जैसे नवगीतकारों ने अपने विशिष्ट सृजन से इस विधा में अपनी एक अलग पहचान दर्ज की है।

**हाइकू :** हाइकू लेखन का प्रचलन गुजरात में अपेक्षाकृत अधिक हुआ है। डॉ. भगवतशरण अग्रवाल ने हाइकू विधा की व्यापक समीक्षा के साथ उसके सम्पूर्ण वृत्त पर विस्तृत चर्चा विमर्शा की है। डॉ. भगवतशरण अग्रवाल के अनुसार –

गुजरात प्रदेश को उसकी अनेक विशेषताओं, व्यक्तियों एवं कार्यों आदि ने गौरव दिलाया है। काव्य के क्षेत्र में हाइकू–काव्य रचना भी उन्हीं में से एक है। श्री झीणाभाई देसाई 'स्नेहरश्मि' का हाइकू–संग्रह 'सोनेरी चाँद, रूपेरी सूरज' भारतीय भाषाओं में प्रकाशित प्रथम हाइकू–संग्रह है और डॉ. भगवतशरण अग्रवाल का हाइकू संग्रह 'शाश्वत क्षितिज' हिन्दी का प्रथम हाइकू–संग्रह है। गुजरात में इस समय संस्कृत, गुजराती, हिन्दी, राजस्थानी, सिंधी और मराठी आदि भाषाओं में हाइकू लिखे जा रहे हैं। केवल हिन्दी में लगभग सत्रह हाइकूकार साधनारत हैं। यही नहीं अहमदाबाद से, पिछले छः वर्षों से, विश्वभर की भाषाओं के केवल हाइकू–काव्य को समर्पित, उसके प्रचार, प्रसार में ही नहीं, उसकी सच्ची समझ, लक्षणों आदि को हिन्दी काव्य के समीक्षकों एवं सहृदयों तक पहुँचाने की साधनारत पत्रिका हाइकु–भारती का प्रकाशन, मेरे संपादकत्व में अहमदाबाद से ही हो रहा है। गुजरात सहित देश के विभिन्न विश्वविद्यालयों में डॉ. अग्रवाल तथा अन्य हाइकुकारों के हाइकु–साहित्य पर एम.ए., एम.फिल, तथा पी.एच.डी. जैसी पदवीयों के लिए लिखे शोध–प्रबंध स्वीकृत तथा प्रकाशित हो चुके हैं तथा अनेक विश्वविद्यालयों में शोधकार्य चल रहा है। यह मैं इसलिए बता रहा हूँ, जिससे आपको ज्ञात हो कि हाइकु–विधा को विद्वानों ने गंभीरता से स्वीकार कर लिया है। अब तक सौ से अधिक हाइकु कविता छापती हैं। गुजरात के समकालीन हाइकु–काव्य का परिचय देने से पहले, मैं उन सहृदय पाठकों के लिए जो इस विधा के लक्षणों आदि से अपरिचित हैं, इस विधा का साधारण परिचय देना आवश्यक समझता हूँ।

SMT. HANSA MEHTA LIBRARY M. S. University of Baroda

हाइकु मूलतः एक जापानी मुक्तक काव्य प्रकार है। जापानी भाषा अक्षराधारित (पौलीसिलेबिक–ध्वनिघटक) भाषा है तथा चित्रात्मक लिपि में लिखी जाती है। शास्त्रीय रूप में हाइकु में ५, ७, ५ के क्रम में तीन पंक्तियों में १७ अक्षर होते हैं। यह एक अतुकांत छंद है, पर तुकांत हाइकु भी लिखे जा सकते हैं। मात्रायें और अर्धाक्षर नहीं गिने जाते। यह केवल उसके ढाँचे की बात हुई। हाइकु के शिल्पपक्ष के अन्य अनेक लक्षण भी हैं। किन्तु आजकल उनका पालन जापान में भी सभी हाइकुकार नहीं करते, तो फिर भारतादि देशों के हाइकुकारों से इसकी उपेक्षा कैसे की जा सकती है। हाइकु के विश्व कविता बनने के बाद तो यह बंधन और भी ढीले हो गये हैं। भारत में बीसवीं शताब्दी के दूसरे तीसरे दशक में, तेलुगु एवं तमिल भाषाओं में जापानी हाइकु के अनुवाद छपे थे। हिन्दी में छठे दशक में अज्ञेय ने अपनी जापान की यात्रा से वापिस लौटकर, हिन्दी काव्य–जगत को कुछ जापानी हाइकुओं के अनुवाद के माध्यम से, इसका विशेष परिचय दिया। किन्तु उन्होंने सत्रह अक्षरीय ५, ७, ५ के क्रम में त्रिपंक्तिक हाइकु नहीं लिखे।

हाइकु, अनुभूतियों के चरम उत्कर्ष के क्षण में लिखा मुक्तक है। प्रारंभ में जापान में अध्यात्म एवं गंभीर विषयों पर, प्राकृतिक बिंबों के चित्रात्मक आलेखन को हाइकु का कथ्य माना गया और हलकी–फुलकी रचनाओं को सेन्र्य। किन्तु बाद को धीरे धीरे यह भेद समाप्त हो गया। परन्तु विरोधी बिंबों द्वारा चमत्कारिकता, चित्रात्मकता तथा कथ्य की मार्मिकता को, आज भी हाइकु का मुख्य गुण माना जाता है। वास्तव में हाइकु मूलतः तो मुक्तक काव्य ही है, इसलिए मुक्तक काव्य से अपेक्षित काव्य–गुणों की अपेक्षा हाइकु से होना स्वाभाविक है। हिन्दी, उसकी बोलियों तथा भारत की अनेक भाषाओं में आज हाइकु छंद में ढाँचे में त्रिपदियाँ अधिक लिखी जा रही हैं और काव्य गुणयुक्त शुद्ध हाइकु बहुत कम। हाइकु को केवल एक सत्रह अक्षरीय त्रिपदी छंद के रूप में प्रयोग करके अब

तक हिन्दी में प्रबंध-काव्यों, हाइकु गजलों, हाइकु-गीतों आदि विधाओं की रचनायें प्रकाशित हो चुकी हैं। किन्तु इसके साथ ही हमारे मन और मस्तिष्क को झंकृत करनेवाली, चित्रात्मकता से परिपूर्ण, विभिन्न बिंबों एवं प्रतीकों के माध्यम से कथ्य को संप्रेषित करनेवाली शुद्ध हाइकु रचनाओं का सृजन भी हिन्दी काव्य क्षेत्र में हो रहा है।[९३]

गुजरात में श्रेष्ठ हाइकु सर्जकों में डॉ. भगवतशरण अग्रवाल, रमेशचन्द्र शर्मा 'चन्द्र', आ. रघुनाथ भट्ट, डॉ. प्रवीण तोगड़िया, डॉ. विष्णु विराट, गिरिधारीलाल सराफ, मुकेश रावल, किशोर काबरा, डॉ. भागवत प्रसाद मिश्र 'नियाज', डॉ. चन्द्रकांत मेहता, श्रीमती मधुप्रसाद, डॉ. रजनीकांत जोशी, डॉ. कमल पुंजाणी, डॉ. शांति शर्मा आदि ने हिन्दी हाइकु लेखन में अपनी पहचान दर्ज की है।

डॉ. भगवतशरण अग्रवाल के हाइकु उदाहरण देखिए –

- **मैंने तुमसे / कुछ बूँद माँगी थीं / सागर नहीं !**
- **कौन-सी करूँ / सुख की परिभाषा / सीता या राधा ?**
- **पूर्ण में पूर्ण / जोड़ा-घटाया-गुणा / पूर्ण ही रहा।**

(शाश्वत क्षितिज से)

रमेशचन्द्र शर्मा 'चन्द्र' के हाइकु देखिए –

- **शब्दों की ध्वनि / लयात्मक कथन / काव्य की संज्ञा।**
- **पिंगला नाड़ी / तीव्र पाचन क्रिया / शरीर स्वस्थ।**
- **कबीर जैसा / साहसी व अक्खड़ / दूसरा नहीं।**

('कौंध' संग्रह से)

डॉ. विष्णु विराट के हाइकु कुछ इस तरह के हैं –

- गूँगे हैं लोग / घर घर में रोग / कैसे आयोग?
- कौओं की काँव / बरगद की छाँव / रोता है गाँव।
- गुलमहर / रातभर महका / तुम कहाँ थे?
- कुछ साँप थे / राजनीति में आए / शुद्ध हो गए।

('आमने सामने' से)

इन तमाम साहित्य विधाओं के अनन्तर यहाँ खण्डकाव्यों तथा महाकाव्यों की रचनाएँ हुई है। डॉ. अम्बाशंकर नागर की प्रम्लोचा, डॉ. किशोर काबरा का 'उत्तर महाभारत', डॉ. विष्णु विराट की 'निर्वसना' प्रबंधात्मक काव्य कृतियाँ प्रसिद्ध हैं।

भाषा, छन्द, रस अलंकार आदि की दृष्टि से गुजरात में सृजित हिन्दी काव्य अत्यन्त श्रेष्ठ एवं समृद्ध है, इसमें संदेह नहीं। यहाँ साहित्य की प्रायः सभी विधाओं में उत्कृष्ट साहित्य की रचना हुई हैं।

# संदर्भ

१. गुजरात की समकालीन हिन्दी कविता – संपा. अंबाशंकर नागर, पृ. २

२. तरंगिनी – भागवत प्रसाद मिश्र 'नियाज', पृ. १२

३. गीत रश्मि – भागवत प्रसाद मिश्र, पृ, १४

४. प्रो. अंबाशंकर नागर

५. वही

६. वही

७. अहे कवि – अंबाशंकर नागर

८. वही

९. वही

१०. वही

११. गांधी शताब्दी पर – अंबाशंकर नागर

१२. अंबाशंकर नागर

१३. वही

१४. वही

१५. वही

१६. वही

१७. वही

१८. वही

१९. वही

२०. वही

२१. वही

२२. चाँद, चाँदनी और केकटस – डॉ. अंबाशंकर नागर

२३. डॉ. अबाशंकर नागर

२४. वही

२५. वही

२६. वही

२७. वही

२८. वही

२९. वही

३०. वही

३१. दो घड़ी हंस बोल ले हम

३२. एक अनुभूति

३३. वही

३४. याद तेरी आती है

३५. आज मन मायूस है

३६. रंग रसीया

३७. मगर तूम न आए

३८. यदि तुम होत केवल मेरे

३९. अलविदा

४०. चाँद, चाँदनी और केकटस

४१. वही

४२. प्रम्लोचा

४३. वही

४४. वही

४५. वही

४६. गुजरात के समकालीन हिन्दी कवि – डॉ. गोवर्द्धन शर्मा, पृ. ३

४७. पिछली बहार के सूरजमुखी – डॉ. अविनाश श्रीवास्तव

४८. वही

४९. समान्तर रेखाओं का त्रिकोण – डॉ. अविनाश श्रीवास्तव

५०. पिछली बहार के सूरजमुखी – डॉ. अविनाश

५१. छूटे तटबंधों पर पुनः – डॉ. अविनाश

५२. वही

५३. ठहरी हुई धूप – अविनाश

५४. छूटे तटबंधों पर पुनः – डॉ. अविनाश

५५. गुजरात के समकालीन हिन्दी कवि – आलेख; भावना मेहता, पृ. २५

५६. उत्तर महाभारत – डॉ. किशोर काबरा

५७. वही

५८. वही

५९. वही

६०. वही

६१. वही

६२. वही

६३ परिताप के पाँच क्षण – डॉ. किशोर काबरा

६४. धनुष भंग – डॉ. किशोर काबरा

६५. जलते पनघट बुझते मरघट – किशोर काबरा

६६. गुजरात के समकालीन हिन्दी कवि – आलेख, डॉ. महावीर सिंह चौहान, पृ. ४७

६७. पछुवा के हस्ताक्षर – भगवानदास जैन

६८. फैली पलाश के कानन लौं – विष्णु विराट

६९. वही

७०. वही

७१. मोहि बीन के तारन में कसि लै – डॉ. विराट

७२. सूलन सेज पै फूल गुलाब के – डॉ. विराट

७३. वही

७४. वही

७५. विराट सतसई – विष्णु विराट

७६. विराट अभिनन्दन ग्रंथ – आलेख, भगवानदास जैन, पृ. ८

७७. छंद राग – विष्णु विराट

७८. वही

७९. विराट अभिनन्दन ग्रंथ – आलेख, आ. त्रिलोकीनाथ व्रजबालक, पृ. ८५

८०. हाथ से छूटे कबूतर – भूमिका से

८१ वही

८२. वही

८३. वही – भूमिका, कुमार रवीन्द्र

८४. विराट अभिनन्दन ग्रंथ – आलेख, प्रो. शिवकुमार मिश्र, पृ. ८२

८५. साहित्य संहिता – अप्रैल–जून, २००२, पृ. ४

८६. मैं कटघरे में हूं – पृ. ६६.

८७. वशीरवद्र – साहित्य सागर, अप्रैल, २००२

८८. वही

८९. गुजरात का समकालीन हिन्दी साहित्य – प्रो. भगवानदास जैन, पृ. १६६

९०. वही, पृ. २२७

९१. वही, पृ. २३०

९२. विराट अभिनन्दन ग्रंथ – आलेख, डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ, पृ. ५९

९३. गुजरात का समकालीन हिन्दी साहित्य – प्रो. भगवानदास जैन, पृ. २१०